अथवा जिनपालितो निमित्तम्, हेतुर्मोक्षः, शिक्षकाणां हर्षोत्पादनं निमित्त-हेतुकथने प्रयोजनम् । परिमाणमुच्चदे - अक्खर-पय-संघाय-पडिवत्ति-अणियोगद्दारेहि संखेज्जं, अत्थदो अणंतं । पदं पडुच्च अट्ठारह-पद-सहस्सं । शिक्षकाणां हर्षोत्पादनार्थं मतिव्याकुलता-विनाशनार्थं च परिमाणमुच्यते[1] । णामं जीवट्ठाणमिदि । कारणं पुव्वं व वत्तव्वं ।

तत्थ कत्ता दुविहो[2]-- अत्थ-कत्ता गंथ-कत्ता चेदि । तत्थ अत्थ-कत्ता दव्वादीहि चउहि परूविज्जदि । तत्र तस्य तावद् द्रव्यनिरूपणं क्रियते, स्वेद-रजो-मल-रक्तनयन-कटाक्षशरमोक्षादि--शरीरगताशेषदोषादूषित--समचतुरस्रसंस्थान--वज्रवृषभसंहनन-दिव्यगन्ध-प्रमाणस्थितनखरोम-निर्भूषणायुधाम्बरभय-सौम्यवदनादि-विशिष्टदेहधरः

अथवा, जिनपालित इस श्रुतावतारके निमित्त हैं और उसका हेतु मोक्ष है, अर्थात् मोक्षके हेतु जिनपालितके निमित्तसे इस श्रुतका अवतार हुआ है । यहां पर निमित्त और हेतुके कथन करनेसे पाठकजनोंको हर्षका उत्पन्न करना ही प्रयोजन है ।

अब परिमाणका व्याख्यान करते हैं, अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति, और अनुयोग द्वारोंकी अपेक्षा श्रुतका परिमाण संख्यात है और अर्थ अर्थात् तद्वाच्य विषयकी अपेक्षा अनन्त है । पदकी अपेक्षा अठारह हजार प्रमाण है । शिक्षकजनोंको हर्ष उत्पन्न करानेके लिये और मतिसंबन्धी व्याकुलता दूर करनेके लिये यहां पर परिमाण कहा गया है ।

नाम-- इस शास्त्रका नाम जीवस्थान है । *

कारण-- कारणका व्याख्यान पहले कर आये हैं । उसी प्रकार यहांपर भी उसका व्याख्यान करना चाहिये ।

कर्ताके दो भेद हैं, अर्थकर्ता और ग्रन्थकर्ता । इनमेंसे अर्थकर्ताका द्रव्यादिक चार के द्वारा निरूपण किया जाता है । उनमेंसे पहले द्रव्यकी अपेक्षा अर्थकर्ताका निरूपण करते हैं--

पसीना, रज अर्थात् बाह्य कारणोंसे शरीरमें उत्पन्न हुआ मल, मल अर्थात् शरीरसे उत्पन्न हुआ मल, रक्त-नेत्र और कटाक्षरूप बाणोंका छोड़ना आदि शरीरमें होनेवाले संपूर्ण दोषोंसे रहित, समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषनाराच संहनन, दिव्य-सुगन्धमयी, सदैव योग्य प्रमाणरूप नख और रोमवाले, आभूषण, आयुध, वस्त्र और भयरहित सौम्य-मुख आदिसे

---

१. विविहत्थेहि अणंतं संखेज्जं अक्खराणगणणाए । एदं पमाणमुदिदं सिस्साणं मइविकासयरं ॥ ति. प. १, ५३.

२. कत्तारो दुवियप्पो णादव्वो अत्थगंथभेदेहि । दव्वादिचउप्पयारेहिं भासिमो अत्थकत्तारो ॥ सेदरजाइमलेणं रत्तच्छिकदुक्खवाणमोक्खेहिं । इयपहुदिदेहदोसेहिं संततमदूसिदसरीरो ॥ आदिमसंहणणजुदो समचउरस्संगचारुसंठाणो । दिव्ववरगंधधारी पमाणट्ठिदरोमणखरूवो ॥ णिब्भूसणायुधंबरभीदी सोम्माणणादिदिव्वतणू । अट्ठब्भहियसहस्सपमाणवरलक्खणोपेदो ॥ चउविहउवसग्गेहिं णिच्च विमुक्को कसायपरिहीणो । छुहपहुदिपरिसहेहिं परिचत्तो रायदोसेहिं ॥ ति. प. १, ५५-५९.

चतुर्विधोपसर्गक्षुधादिपरिषह-रागद्वेषकषायेन्द्रियादिसकलदोषगोचरातिक्रान्तः योजनान्तरदूरसमीपस्थाष्टादशभाषा-सप्तशतकुभाषायुत-तिर्यग्देवमनुष्यभाषाकार-न्यूनाधिकभावातीतमधुरमनोहरगम्भीरविशदवागतिशयसम्पन्नः भवनवासिवाणव्यन्तर-ज्योतिष्क-कल्पवासीन्द्र[1]-विद्याधर-चक्रवर्ति-बल-नारायण-राजाधिराज-महाराजार्ध-महामण्डलीकेन्द्राग्नि-वायु-भूति-सिंह-व्यालादि- देव-विद्याधर-मनुष्यर्षि-तिर्यगिन्द्रेभ्यः प्राप्तपूजातिशयो महावीरोऽर्थकर्ता ।

तत्थ खेत्त-विसिट्ठोत्थ-कत्ता परूविज्जदि--

पंच-सेल-पुरे रम्मे विउले पव्वदुत्तमे ।
णाणा-दुम-समाइण्णे देव-दाणव-वंदिदे[2] ॥ ५२ ॥
महावीरेणत्थो कहिओ भविय-लोयस्स ।

अत्रोपयोगिनौ श्लोकौ--

युक्त ऐसे विशिष्ट शरीरको धारण करनेवाले, देव, मनुष्य, तिर्यंच और अचेतनकृत चार प्रकारके उपसर्ग, क्षुधा आदि बावीस परीषह, राग, द्वेष, कषाय और इन्द्रिय-विषय आदि संपूर्ण दोषोंसे रहित, एक योजनके भीतर दूर अथवा समीप बैठे हुए अठारह महाभाषा और सातसौ लघुभाषाओंसे युक्त ऐसे तिर्यंच, देव और मनुष्योंकी भाषाके रूपमें परिणत होनेवाली तथा न्यूनता और अधिकतासे रहित, मधुर, मनोहर, गम्भीर और विशद ऐसी भाषाके अतिशयको प्राप्त, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क, कल्पवासी देवोंके इन्द्रोंसे, विद्याधर, चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, राजा, अधिराज, महाराज, अर्धमण्डलीक, मण्डलीक, महामण्डलीक राजाओंसे, इन्द्र, अग्नि, वायु, भूति, सिंह, व्याल आदि, देव तथा विद्याधर-मनुष्य-ऋषि और तिर्यंचोंके इन्द्रोंसे पूजाके अतिशयको प्राप्त श्री महावीर तीर्थंकर अर्थकर्ता समझना चाहिये ।

अब क्षेत्र-विशिष्ट अर्थकर्ताका निरूपण करते हैं--

पंचशैलपुरमें (पंचपहाड़ी अर्थात् पांच पर्वतोंसे शोभायमान राजगृह नगरके पास) रमणीक, नानाप्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त, देव तथा दानवोंसे वन्दित और सर्व पर्वतोंमें उत्तम ऐसे विपुलाचल नामके पर्वतके ऊपर भगवान् महावीरने भव्य-जीवोंको अर्थका उपदेश दिया अर्थात दिव्य-ध्वनिके द्वारा जीवादि पदार्थों और मोक्षमार्ग आदिका उपदेश दिया ॥ ५२ ॥

इसविषयमें दो उपयोगी श्लोक हैं--

---

१. जोयणपमाणसंठिदतिरियामरमणुवनिवहपडिबोहो । मिदमधुरगभीरतरा विसदविसयसयलभासाहिं ॥ अट्ठरसमहाभासा खुल्लयभासा वि सत्तसयसंखा । अक्खरअणक्खरप्पयसण्णीजीवाण सलयभासाओ ॥ एदासिं भासाणं तालुवदंतोट्ठकंठवावारं । परिहरिय एक्ककालं भव्वजणाणंदकरभासो ॥ भावणवेंतरजोइसियकप्पवासेहिं केसवबलेहिं । विज्जाहरेहिं चक्किप्पमुहेहिं णरेहिं तिरिएहिं ॥ एदेहिं अण्णेहिं विरचिदचरणारविंदजुगपूजो । दिट्ठसयलट्ठसारो महवीरो अत्थकत्तारो ॥ ति. प. १, ६०-६४.

२. जयधवलायां गाथेयं ' सिद्धचारणसेविदे ' इति चतुर्थचरणपाठभेदेनोपलभ्यते । सुरखेयरमणहरणे गुणणामे पंचसेलणयरम्मि । विउलम्मि पव्वदवरे वीरजीणो अट्ठकत्तारो ॥ ति. प. १, ६५. ईरेइ विसेसेण खवेइ कम्माइं गमयइ सिवं वा । गच्छइ य तेण वीरो स महं वीरो महावीरो ॥ वि. भा. १०६५.

ऋषिगिरिरैन्द्राशायां[1] चतुरस्रो याम्यदिशि च वैभारः ।
विपुलगिरिर्नैऋत्यामुभौ त्रिकोणौ स्थितौ तत्र[2] ॥ ५३ ॥

धनुराकारश्छिन्नो वारुणवायव्यसौम्यदिक्षु ततः ।
वृत्ताकृतिरैशान्यां पाण्डुः सर्वे कुशाग्रवृताः[3] ॥ ५४ ॥

एसो खेत्त-परिच्छेदो ।

तत्थ कालदो अत्थ-कत्ता परूविज्जदि---

इमिसे[4] वसप्पिणीए चउत्थ-समयस्स पच्छिमे भाए ।
चोत्तीस-वास-सेसे किंचि विसेसूणए संते[5] ॥ ५५ ॥

पूर्व दिशामें चौकोर आकारवाला ऋषिगिरि नामका पर्वत है । दक्षिण दिशामें वैभार और नैऋत दिशामें विपुलाचल नामके पर्वत हैं । ये दोनों पर्वत त्रिकोण आकारवाले हैं ॥५३॥

पश्चिम, वायव्य और सौम्य दिशामें धनुषके आकारवाला फैला हुआ छिन्न नामका पर्वत है । ऐशान दिशामें वृत्ताकार पाण्डु नामका पर्वत हैं । ये सब पर्वत कुशके अग्रभागोंसे ढके हुए हैं ॥ ५४ ॥

यह क्षेत्र-परिच्छेद समझना चाहिये ।

अब कालकी अपेक्षा अर्थकर्ताका निरूपण करते हैं—

इस अवसर्पिणी कल्पकालके दुःषमा-सुषमा नामके चौथे कालके पिछले भागमें कुछ कम चौतीस वर्ष बाकी रहनेपर, वर्षके प्रथममास अर्थात् श्रावण मासमें, प्रथमपक्ष अर्थात्

---

१. जयधवलायां ' भूगिरि ' इति पाठः ।

२. चउरस्सो पुव्वाए रिसिसेलो दाहिणाए वेभारो । णइरिदिदिसाए विउलो दोण्णि तिकोणट्ठिदायारा ॥ ति. प. १, ६६.

३. धनुराकारश्चन्द्रो वारुणवायव्यसामदिक्षु ततः । वृत्ताकृतिरीशाने पांडुः सर्वे कुशाग्रवृताः । जयध. अ. पृ. ९. चावसरिच्छो छिण्णो वरुणाणिलसोमदिसविभागेसु । ईसाणाए पंडुव वट्टो सव्वे कुसग्गपरियरणा ॥ ति. प. १, ६७. ऋषिपूर्वो गिरिस्तत्र चतुरस्रः सनिर्झरः । दिग्गजेन्द्र इवेन्द्रस्य ककुभं भूषयत्यलम् ॥ वैभारो दक्षिणामाशां त्रिकोणाकृतिराश्रितः । दक्षिणापरदिङ्मध्यं विपुलश्च तदाकृतिः ॥ सज्यचापाकृतिस्तिस्रो दिशो व्याप्य बलाहकः । शोभते पाण्डुको वृत्तः पूर्वोत्तरदिगन्तरे ॥ ह. पु. ३, ५३–५५.

४. मु. इम्मिस्से ।

५. एत्थावसप्पिणीए चउत्थकालस्स चरिमभागम्मि । तेत्तीसवासअडमासपण्णरसदिवससेसम्मि ॥

वासस्स पढम-मासे पढमे पक्खम्हि सावणे बहुले ।
पाडिवद-पुव्व-दिवसे तित्थुप्पत्ती दु अभिजिम्हि[1] ॥ ५६ ॥
सावण-बहुल-पडिवदे रुद्द-मुहुत्ते सुहोदए रविणो ।
अभिजिस्स पढम-जोए एत्थ[2] जुगाई[3] मुणेयव्वो[4] ॥ ५७ ॥

एसो कालपरिच्छेदो ।

भावतोऽर्थकर्ता निरूप्यते — ज्ञानावरणादि-निश्चय-व्यवहारापायातिशयजातानन्तज्ञान -दर्शन-सुख-वीर्य - क्षायिक-सम्यक्त्व-दान-लाभ-भोगोपभोग-निश्चय-व्यवहार-प्राप्त्यतिशयभूत-नव-केवल-लब्धि-परिणतः[5] । उत्तं च--

---

कृष्णपक्षमें, प्रतिपदाके दिन प्रातःकालके समय आकाशमें अभिजित् नक्षत्रके उदित रहने पर तीर्थ अर्थात् धर्मतीर्थकी उत्पत्ति हुई ॥ ५५, ५६ ॥

श्रावणकृष्ण-प्रतिपदाके दिन रुद्रमूहूर्तमें सूर्यका शुभ उदय होने पर और अभिजित् नक्षत्रके प्रथम योगमें जब युगकी आदि हुई तभी तीर्थ की उत्पत्ति समझना चाहिये ॥ ५७ ॥ यह काल-परिच्छेद हुआ ।

अब भावकी अपेक्षा अर्थकर्ताका निरूपण करते हैं---

ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके निश्चय-व्यवहाररूप विनाश कारणोंकी विशेषतासे उत्पन्न हुए अनन्तज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य तथा क्षायिक-सम्यक्त्व, दान, लाभ, भोग और उपभोगकी निश्चय-व्यवहाररूप प्राप्तिके अतिशयसे प्राप्त हुई नौ केवल-लब्धियोंसे परिणत भगवान् महावीरने भावश्रुतका उपदेश दिया । अर्थात् निश्चय और व्यवहारसे अभेद-भेदरूप नौ लब्धियोंसे युक्त होकर भगवान् महावीरने भावश्रुतका उपदेश दिया । कहा भी है---

---

१. वासस्स पढममासे सावणणामम्मि बहुलपडिवाए । अभिजीणक्खत्तम्मि य उप्पत्ती धम्मतित्थस्स ॥ ति. प. १, ६८–६९.

२. मु. जत्थ ।

३. जुगाइ (युगादि) युगारम्भे, युगारम्भकाले प्रथमतः प्रवृत्ते मासि तिथिमुहूर्तादौ च । आदी जुगस्स संवच्छरो उ मासस्स अद्धमासो उ । दिवसा भरहेरवए राईया सह विदेहेसु ॥ युगस्य × × संवत्सर-पंचकात्मकस्यादिः संवत्सरः । स च श्रावणतः आषाढपौर्णमासीचरमसमयः । ततः प्रवर्तमानः श्रावण एव भवति । तस्यापि च मासस्य श्रावणस्यादिरर्धमासः पक्षः पक्षद्वयमीलनेन मासस्य संभवात् । सो पि च पक्षो बहुलो वेदितव्यः पौर्णमास्यनन्तरं बहुलपक्षस्यैव भावात् । × × । दिवसाइ अहोरत्ता बहुलाईयाणि होंति पव्वाणि । अभिई नक्खत्ताई रुद्दो आई मुहुत्ताणं ॥ सावण-बहुलपडिवए बालवकरणे अभिइनक्खत्ते । सव्वत्थ पढमसमए जुगस्स आइं वियाणाहि ॥ ज्यो. क. २ पाहुड । वक्ष्यन्ते ये च कालांशाः सुषमसुषमादयः । आरम्भं प्रतिपद्यन्ते सर्वे तेऽपि युगादितः ॥ लो. प्र. २५, ४७१.

४. सावणबहुले पाडिव रुद्दमुहुत्ते सुहोदए रविणो । अभिजिस्स पढम जोए जुगस्स आदी इमस्स पुढं ॥ ति. प. १, ७०. श्रावणस्यासिते पक्षे नक्षत्रेऽभिजिति प्रभुः । प्रतिपद्यह्नि पूर्वाह्णे शासनार्थमुदाहरत् ॥ ह. पु. २, ९१.

५. णाणावरणप्पहुदि अ णिच्छयववहारपायअतिसयए । संजादेण अणंतं णाणेणं दंसणसुहेणं ॥ विरिएण तहा खाइयसम्मत्तेणं पि दाणलाहेहिं । भोगोपभोगणिच्छयववहारेहिं च पुरिपुण्णो ॥ ति. प. ७१, ७२.

दाणे लाभे भोगे परिभोगे वीरिए य सम्मत्ते ।
णव केवल-लद्धीओ दंसण-णाणं चरित्ते य ॥ ५८ ॥[1]
खीणे दंसण-मोहे चरित्त-मोहे तहेव[2] घाइ-तिए ।
सम्मत्त-विरिय-णाणं खइयाइं होंति केवलिणो[3] ॥ ५९ ॥
उप्पण्णम्हि अणंते णट्ठम्मि य छादुमत्थिए णाणे ।
णव-विह-पयत्थ-गब्भा दिव्वज्झुणी कहेइ सुत्तट्ठं[4] ॥ ६० ॥

एवंविधो महावीरोऽर्थकर्ता । तेण महावीरेण केवलणाणिणा कहिदत्थो तम्हि चेव काले तत्थेव खेत्ते खयोवसम-जणिद-चउरमल-बुद्धि-संपण्णेण बम्हणेण गोदम-गोत्तेण सयलदुस्सुदि-पारएण जीवाजीव-विसय-संदेह[5]-विणासणट्ठमुवगय-वड्ढमाण-पाद-मूलेण इंदभूदिणावहारिदो[6] । उत्तं च--

---

दान, लाभ, भोग, परिभोग, वीर्य, सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान और चारित्र ये नव केवल-लब्धियाँ हैं ॥ ५८ ॥

दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयके क्षय हो जानेपर तथा शेष तीन घातिया कर्मोंके क्षय हो जानेपर केवलीजिनके सम्यक्त्व, वीर्य और ज्ञान ये क्षायिक भाव प्रगट होते हैं ॥५९॥

क्षायोपशमिक ज्ञानके नष्ट हो जानेपर और अनन्तरूप केवलज्ञानके उत्पन्न हो जानेपर नौ प्रकारके पदार्थोंसे गर्भित दिव्यध्वनि सूत्रार्थका प्रतिपादन करती हैं । अर्थात् केवलज्ञान हो जानेपर भगवान्की दिव्यध्वनि खिरती है ॥ ६० ॥

इस प्रकार भगवान् महावीर अर्थ-कर्ता हैं । इस प्रकार केवलज्ञानसे विभूषित उन भगवान् महावीरके द्वारा कहे गये अर्थको, उसी कालमें और उसी क्षेत्रमें क्षयोपशमविशेषसे उत्पन्न हुए चार प्रकारके निर्मल ज्ञानसे युक्त, वर्णसे ब्राह्मण, गोतमगोत्री, संपूर्ण दुःश्रुतिमें पारंगत, और जीव-अजीवविषयक संदेहको दूर करनेके लिये श्री वर्द्धमानके पादमूलमें उपस्थित हुए ऐसे इन्द्रभूतिने अवधारण किया । कहा भी है--

---

१. ब. प्रतौ गाथेयं नास्ति । २. मु. चउक्क ।

३. खीणे दंसणमोहे चरित्तमोहे तहेव घाइतिए । सम्मत्तणाणविरिया खइया ते होंति केवलिणो ॥ जयध. अ. पृ. ८. दंसणमोहे णट्ठे घादित्तिदए चरित्तमोहम्मि । सम्मत्तणाणदंसणवीरियचरियाइ होंति खइयाइं ॥ ति. प. १, ७३.

४. जादे अणंतणाणे णट्ठे छदुमट्ठिदम्मि णाणम्मि । णवविहपदत्थसारा दिव्वज्झुणी कहइ सुत्तत्थं ॥ अण्णेहिं अणंतेहिं गुणेहिं जुत्तो विसुद्धचारित्तो । भवभयभंजणदच्छो महवीरो अत्थकत्तारो ॥ ति. प. १, ७४-७५.

५. महवीरभासियत्थो तस्सिं खेत्तम्मि तत्थकाले य । खायोवसमविवड्ढिदचउरमलमईहिं पुण्णेणं ॥ लोयालोयाण तहा जीवाजीवाण विविहविसएसु । संदेहणासणत्थं उवगदसिरिवीरचलणमूलेण ॥ विमले गोदमगोत्ते जादेणं इंदभूदिणामेणं । चउवेदपारगेणं सिस्सेण विसुद्धसीलेण ॥ ति. प. १, ७६-७८.

६. मिथ्यादृष्टयवस्थायामिन्द्रभूतिः सकलवेदवेदाङ्गपारगः सन्नपि जीवास्तित्वविषये संदिग्ध एवासीत् ।

गोत्तेण गोदमो[1] विप्पो चाउव्वेय-सडंगवि ।
णामेण इंदभूदि त्ति सीलवं बम्हणुत्तमो ॥ ६१ ॥

पुणो तेणिंदभूदिणा भाव-सुद-पज्जय-परिणदेण बारहंगाणं चोद्दस-पुव्वाणं च गंथाणमेक्केण चेव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा[2] । तदो भाव-सुदस्स अत्थ-पदाणं च तित्थयरो कत्ता । तित्थयरादो सुद-पज्जाएण गोदमो परिणदो त्ति दव्व-सुदस्स गोदमो कत्ता । तत्तो गंथ-रयणा जादेत्ति । तेण वि[3] गोदमेण दुविहमवि सुदणाणं लोहज्जस्स संचारिदं । तेण वि जंबूसामिस्स संचारिदं । परिवाडिमस्सिदूण एदे तिण्णि वि सयल-सुद-धारया भणिया । अपरिवाडिए पुण सयल-सुद-पारगा संखेज्ज-सहस्सा ।

गौतमगोत्री, विप्रवर्णी, चारों वेद और षडंगविद्याका पारगामी, शीलवान् और ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ऐसा वर्द्धमानस्वामीका प्रथम गणधर इन्द्रभूति इस नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ६१ ॥

अनन्तर भावश्रुतरूप पर्यायसे परिणत उस इन्द्रभूतिने बारह अंग और चौदह पूर्वरूप ग्रन्थोंकी एक ही मुहूर्तमें क्रमसे रचना की । अतः भावश्रुत और अर्थ-पदोंके कर्ता तीर्थंकर हैं । तथा तीर्थंकरके निमित्तसे गौतम गणधर श्रुतपर्यायसे परिणत हुए, इसलिये द्रव्यश्रुतके कर्ता गौतम गणधर हैं। इसतरह गौतम गणधरसे ग्रन्थरचना हुई । उन गौतम गणधरनेभी दोनों प्रकारका श्रुतज्ञान लोहार्यको दिया । लोहार्यनेभी जम्बूस्वामीको दिया । परिपाटी-क्रमसे ये तीनों ही सकलश्रुतके धारण करनेवाले कहे गये हैं। और यदि परिपाटी-क्रमकी अपेक्षा न की जाय तो उस समय संख्यात हजार सकलश्रुतके धारी हुए ।

प्रश्नानन्तरं समवसरणं समभ्येत्य प्रवृज्य च श्रीवर्धमानस्वामिनं पप्रच्छ किं जीवोऽस्ति नास्ति वा किंगुणः कियान् कीदृग् ?' तदा जीवोऽस्त्यनादिनिधनः शुभाशुभविभेदकर्मणां कर्ता । × × इत्याद्यनेकभेदैस्तथा स जीवादिवस्तु सद्भावम् । दिव्यध्वनिना स्फुटमिन्द्रभूतये सन्मतिरवोचत् । इन्द्र. श्रुता. ४५–६४. देवैः क्रियमाणां समवसरणलक्षणां महिमां दृष्ट्वाऽमर्षितः सन्निन्द्रभूतिर्भणति–भो भो ब्राह्मणवराः ! मां मुक्त्वा किमेष नागरलोकस्तस्य कस्यचित्पादमूलं धावति ? ननु महत्कुतूहलं कथयतात्रनिबन्धनमिति महाप्रलयमेघ इव गर्जित्वा समवसरणं प्रविष्टो वादार्थम् । परं च तत्र श्रीवीरं दृष्ट्वा हतप्रभ इव सशङ्कितः सन् पुरतः स्थितः । तदा भगवता वीरेणाभाषितः ' किं मन्ने अत्थि जीवो उयाहु नत्थि त्ति संसओ तुज्झ । वेयपयाण य अत्थं ण याणसी तेसिमो अत्थो ' (आ. नि. १५०) ततश्च निःसंशयः सन्नसौ प्रव्रजितः । वि. भा. २०१८–२०८३.

१. गोतमा गौः प्रकृष्टा स्यात् सा च सर्वज्ञभारती । तां वेत्ति तामधीष्टे च त्वमतो गौतमो मतः ॥ गोतमादागतो देवः स्वर्गाग्राद्गौतमो मतः । तेन प्रोक्तमधीयानस्त्वञ्चासीर्गौतमश्रुतिः ॥ इन्द्रेण प्राप्त-पूजर्द्धिरिन्द्रभूतिस्त्वमिष्यसे । साक्षात्सर्वज्ञपुत्रस्त्वमाप्तसंज्ञानकण्ठिकः ॥ आ. पु. २, ५२–५४.

२. भावसुदपज्जएहिं परिणदमइणा य बारसंगाणं । चोद्दसपुव्वाण तहा एक्कमुहुत्तेण विरचणा विहिदा । ति. प. १, ७९.

३. मु. तेण गोदमेण ।

गोदमथेरो[1] लोहज्जाइरियो[2] जंबूसामी य एदे तिण्णि वि सत्त-विह-लद्धि-संपण्णा सयल-सुय-सायर-पारया होऊण केवलणाणमुप्पाइय णिव्वुइं पत्ता[3]। तदो विण्हू णंदिमित्तो अवराइदो गोवद्धणो भद्दबाहु त्ति एदे पुरिसोली-कमेण पंच[4] वि चोद्दस-पुव्व-हरा। तदो विसाहाइरियो पोट्ठिलो खत्तियो जयाइरियो णागाइरियो सिद्धत्थथेरो[5] धिदिसेणो विजयाइरियो बुद्धिल्लो गंगदेवो धम्मसेणो त्ति एदे[6] पुरिसोली-कमेण एक्कारस वि आइरिया एक्कारसण्हमंगाणं उप्पायपुव्वादि-दसण्हं पुव्वाणं च पारया जादा, सेसुवरिम-चदुण्हं पुव्वाणमेग-देस-धरा य। तदो णक्खत्ताइरियो जयपालो पांडुसामी धुवसेणो[7] कंसाइरियो त्ति एदे पुरिसोली-कमेण पंच[8] वि आइरिया एक्कारसंग-धारया जादा, चोद्दसण्हं पुव्वाणमेग-देस-धरा य। तदो सुभद्दो जसभद्दो[9] जसबाहू[10] लोहज्जो त्ति एदे चत्तारि[11] वि आइरिया आयारंग-धरा

गौतमस्थविर, लोहाचार्य और जम्बूस्वामी ये तीनों ही सात प्रकारकी ऋद्धियोंसे युक्त और सकल-श्रुतरूपी सागरके पारगामी होकर अन्तमें केवलज्ञानको उत्पन्न कर निर्वाणको प्राप्त हुए। इसके बाद विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन, और भद्रबाहु ये पांचों ही आचार्य परिपाटी-क्रमसे चौदह पूर्वके धारी हुए।

तदनन्तर विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयाचार्य, नागाचार्य, सिद्धार्थस्थविर, धृतिसेन, विजयाचार्य, बुद्धिल्ल, गंगदेव और धर्मसेन ये ग्यारह ही महापुरुष परिपाटी-क्रमसे ग्यारह अंग और उत्पादपूर्व आदि दश पूर्वोंके धारक तथा शेष उपरिम चार पूर्वोंके एकदेशके धारक हुए।

इसके बाद नक्षत्राचार्य, जयपाल, पाण्डुस्वामी, ध्रुवसेन, कंसाचार्य ये पांचों ही आचार्य परिपाटी-क्रमसे संपूर्ण ग्यारह अंगोंके और चौदह पूर्वोंके एकदेशके धारक हुए। तदनन्तर सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य ये चारों ही आचार्य संपूर्ण आचारांगके धारक और

१. मु. गोदमदेवो।

२. जयधवलायामिन्द्रनन्दिश्रुतावतारे च लोहार्यस्य स्थाने सुधर्माचार्यस्योल्लेखोऽस्ति। तद्यथा-तदो तेण गोअमगोत्तेण इंदभूदिणा अंतोमुहुत्तेणावहारियदुवालसंगत्थेण तेणेव कालेण कयदुवालसंगगंथरयणेण गुणेहि सगसमाणस्स सुहुमाइरियस्स गंथो वक्खाणिदो। जयध. अ. पृ. ११. प्रतिपादितं ततस्तच्छ्रुतं समस्तं महात्मना तेन। प्रथितात्मीयसधर्मणे सुधर्माभिधानाय ॥ इन्द्र. श्रुता. ६७.

३. वासट्ठि वरिसकालो अणुवट्टिय तिण्णि केवलिणो। ब्र. श्रु. ६७.

४. एदेसिं पंचण्हं पि सुदकेवलीणं कालो वस्ससदं १००। जयध. अ. पृ. ११.

५. मु. सिद्धत्थदेवो।

६. तेसिं कालो तिसीदिसदवस्साणि १८३। जयध. अ. पृ. ११.

७. 'द्रुमसेनः' इति पाठः। इन्द्र. श्रुता. ८१.

८. एदेसिं कालो वीसुत्तरविसदवासमेत्तो २२०। जयध. अ. पृ. ११.

९. 'अभयभद्रः' इति पाठः। इन्द्र. श्रुता. ८३.

१०. 'जहबाहू' इति पाठः। जयध. अ. पृ. ११. 'जयबाहुः' इति पाठः। इन्द्र. श्रुता. ८३.

११. एदेसिं × × कालोअट्ठारसुत्तरं वाससदं ११८. जयध. अ. पृ, ११.

सेसंग-पुव्वाणमेग-देस-धरा य[1]। तदो [2]सव्वेसिमंग-पुव्वाणमेग-देसो आइरिय-परंपराए आगच्छमाणो धरसेणाइरियं संपत्तो।

तेण वि सोरट्ठ-विसय-गिरिणयर-पट्टण-चंदगुहा-ठिएण[3] अट्ठंग-महाणिमित्त-पारएण गंथ-वोच्छेदो होहिदि त्ति जाद-भएण पवयण-वच्छलेण दक्खिणावहाइरियाणं महिमाए मिलियाणं लेहो पेसिदो[4]। लेह-ट्ठिय-धरसेणाइरिय[5]-वयणमवधारिय तेहि वि आइरिएहि बे साहू गहण-धारण-समत्था धवलामल-बहु-विह-विणय-विहूसियंगा सील–माला–हरा गुरु–पेसणासण–तित्ता देस–कुल-जाइ-सुद्धा सयल-कला–पारया तिक्खुत्ताबुच्छियाइरिया अंधविसय-वेण्णायडादो पेसिदा। तेसु आगच्छमाणेसु रयणीए

शेष अंग तथा पूर्वोंके एकदेशके धारक हुए। इसके बाद सभी अंग और पूर्वोंका एकदेश आचार्य-परंपरासे आता हुआ धरसेन आचार्यको प्राप्त हुआ।

सौराष्ट्र (गुजरात-काठियावाड़) देशके गिरिनगर नामके नगरकी चन्द्रगुफामें रहनेवाले, अष्टांग महानिमित्तके पारगामी, प्रवचन-वत्सल और आगे अंग-श्रुतका विच्छेद हो जायगा इसप्रकार उत्पन्न हो गया है भय जिनको ऐसे उन धरसेनाचार्यने महामहिमा अर्थात् पंचवर्षीय साधु-सम्मेलनमें संमिलित हुए दक्षिणापथ के (दक्षिणदेशके निवासी) आचार्योंके पास एक लेख भेजा। लेखमें लिखे गये धरसेनाचार्यके वचनोंको भलीभांति समझकर उन आचार्योंने शास्त्रके अर्थको ग्रहण और धारण करनेमें समर्थ, नाना प्रकारकी उज्वल और निर्मल विनयसे विभूषित अंगवाले, शीलरूपी मालाके धारक, गुरुओं द्वारा प्रेषण (भेजने) रूपी भोजनसे तृप्त हुए, देश, कुल और जातिसे शुद्ध, अर्थात् उत्तम देश, उत्तम कुल और उत्तम जातिमें उत्पन्न हुए, समस्त कलाओंमें पारंगत, और तीन बार पूछा है आचार्योंसे जिन्होंने, (अर्थात् आचार्योंसे तीन बार आज्ञा लेकर) ऐसे दो साधुओंको आन्ध्र-देशमें बहनेवाली वेणानदीके तटसे भेजा।

मार्गमें उन दोनों साधुओंके आते समय, जो कुन्दके पुष्प, चन्द्रमा और शंखके समान

---

१. मु.– धारया।

२. एदेसिं सव्वेसिं कालाणं समासो छसदवासाणि तेसीदिवाससमहियाणि ६८३ वड्ढमाणजिणिंदे णिव्वाणं गदे। जयध. अ. पृ. ११.

३. देशे ततः सुराष्ट्रे गिरिनगरपुरान्तिकोर्जयन्तगिरौ। चंद्रगुहाविनिवासी महातपाः परममुनिमुख्यः॥ अग्रायणीयपूर्वस्थितपंचमवस्तुगतचतुर्थमहाकर्मप्राभृतकज्ञः सूरिर्धरसेननामाभूत्॥ इन्द्र. श्रुता. १०३, १०४.

४. देशेन्द्रदेशनामनि वेणाकतटीपुरे महामहिमा-समुदितमुनीन् प्रति ब्रह्मचारिणा प्रापयल्लेखम्॥ इन्द्र. श्रुता. १०६.

५. मु. धरसेण।

पच्छिमभाए[1] कुंदेंदु-संखवण्णा सव्व-लक्खण-संपुण्णा अप्पणो कय-तिप्पदाहिणा पाएसु णिसुढिय[2]-पदियंगा बे वसहा सुमिणंतरेण धरसेण-भडारएण दिट्ठा । एवंविह-सुमिणं दट्ठूण तुट्ठेण धरसेणाइरिएण 'जयउ सुय देवदा' त्ति संलवियं[3] । तद्दिवसे चेय ते दो वि जणा संपत्ता धरसेणाइरियं । तदो धरसेण-भयवदो[4] किदियम्मं काउण दोण्णि दिवसे बोलाविय तदिय-दिवसे विणएण धरसेण-भडारओ तेहिं विण्णत्तो 'अणेण कज्जेणम्हा दो वि जणा तुम्हं पादमूलमुगवया' त्ति । 'सुट्ठु भद्दं' ति भणिऊण धरसेण-भडारएण दो वि आसासिदा । तदो चिंतिदं भयवदा–

सेलघण-भग्गघड-अहि-चालणि-महिसाऽवि-जाहय-सुएहि ।
मट्टिय-मसय-समाणं वक्खाणइ जो सुदं मोहा[5] ॥ ६२ ॥
दढ-गारव-पडिबद्धो विसयामिस-विस-वसेण घुम्मंतो ।
सो भट्ट-बोहि-लाहो भमइ चिरं भव-वणे मूढो ॥ ६३ ॥

सफेद वर्णवाले हैं, जो समस्त लक्षणोंसे परिपूर्ण हैं, जिन्होंने आचार्य (धरसेन) की तीन प्रदक्षिणा दी हैं और जिनके अंग नम्रित होकर आचार्यके चरणोंमें पड़ गये है ऐसे दो बैलोंको धरसेन भट्टारकने रात्रिके पिछले भागमें स्वप्नमें देखा । इस प्रकारके स्वप्नको देखकर संतुष्ट हुए धरसेनाचार्यने 'श्रुतदेवता जयवन्त हो' ऐसा वाक्य उच्चारण किया ।

उसी दिन दक्षिणापथसे भेजे हुए वे दोनों साधु धरसेनाचार्यको प्राप्त हुए । उसके बाद धरसेनाचार्यकी पादवन्दना आदि कृतिकर्म करके और दो दिन बिताकर तीसरे दिन उन दोनोंने धरसेनाचार्यसे निवेदन किया कि 'इस कार्यसे हम दोनों आपके पादमूलको प्राप्त हुए हैं।' उन दोनो साधुओंके इसप्रकार निवेदन करने पर 'अच्छा है, कल्याण हो' इसप्रकार कहकर धरसेन भट्टारकने उन दोनों साधुओंको आश्वासन दिया । इसके बाद भगवान धरसेनने विचार किया कि–

शैलघन, भग्नघट, अहि (सर्प), चालनी, महिष, अवि (मेंढ़ा), जाहक (जोंक), शुक, माटी और मशकके समान श्रोताओंको जो मोहसे श्रुतका व्याख्यान करता है, वह मूढ़ दृढ़ रूपसे ऋद्धि आदि तीनों प्रकारके गारवोंके आधीन होकर विषयोंकी लोलुपतारूपी विषके वशसे मूर्च्छित हो, बोधि अर्थात् रत्नत्रयकी प्राप्तिसे भ्रष्ट होकर भव-वनमें चिरकालतक परिभ्रमण करता है ॥ ६२, ६३ ॥

---

१. मु. पच्छिमे भाए । २. 'भाराक्रान्ते नमेर्णिसुढः'–हे. ८, ४, १५८.

३. आगमनदिने च तयोः पुरैव धरसेनसूरिरपि रात्रौ । निजपादयोः पतन्तौ धवलवृषावैक्षत स्वप्ने ॥ तत्स्वप्नेक्षणमात्राज्जयतु श्रीदेवतेति समुपलपन् । उदतिष्ठदतः प्रातः समागतावैक्षत मुनी द्वौ ॥ इन्द्र. श्रुता. ११२, ११३.

४. ईसरिय-रूव-सिरिं-जस-धम्म पयत्तामया भगाभिक्खा । ते तेसिमसामण्णा संति जओ तेण भगवंते ॥ वि. भा. १०५३.

५. सेलघण कुडग चालिणि परिपूणग हंसमहिसमेसे य । मसग जलूग बिराली जाहग गो भेरि आभीरी बृ. क. सू. ३३४., आ. नि. १३९.

विशेषार्थ--- शैलनाम पाषाणका है और घन नाम मेघका है। जिसप्रकार पाषाण, मेघके चिरकालतक वर्षा करनेपर भी आर्द्र या मृदु नहीं होता है, उसी प्रकार कुछ ऐसे भी श्रोता होते हैं, जिन्हें गुरुजन चिरकालतक भी धर्मामृतके वर्षण या सिंचन द्वारा कोमलपरिणामी नहीं बना सकते हैं ऐसे श्रोताओंको शैलघन श्रोता कहा है ॥ १ ॥ भग्नघट फूटे घड़ेको कहते हैं। जिस प्रकार फूटे घड़ेमें ऊपरसे भरा गया जल नीचेकी ओरसे निकल जाता है भीतर कुछ भी नहीं ठहरता, इसी प्रकार जो उपदेशको एक कानसे सुनकर दुसरे कानसे निकाल देते हैं उन्हें भग्नघट श्रोता कहा है ॥ २ ॥ अहि नाम सांपका है। जिस प्रकार मिश्री मिश्रित-दुग्धके पान करनेपर भी सर्प विषका ही वमन करता है, उसी प्रकार जो सुन्दर, मधुर और हितकर उपदेशके सुनने पर भी विष वमन करते है अर्थात् प्रतिकूल आचरण करते हैं, उन्हें अहिसमान श्रोता समझना चाहिये ॥ ३ ॥ चालनी जैसे उत्तम आटेको नीचे गीरा देती है और भूसा या चोकरको अपने भीतर रख लेती है, इसी प्रकार जो उत्तम सारयुक्त उपदेशको तो बाहर निकाल देते हैं और निःसार तत्त्वको धारण करते हैं वे चालनीसमान श्रोता हैं ॥ ४ ॥ महिषा अर्थात् भैंसा जिस प्रकार जलाशयसे जल तो कम पीता है परंतु बारबार डुबकी लगाकर उसे गंदला कर देता है, उसी प्रकार जो श्रोता सभामें उपदेश तो अल्प ग्रहण करते हैं पर प्रसंग पाकर क्षोभ या उद्वेग उत्पन्न कर देते हैं वे महिषासमान श्रोता हैं ॥ ५ ॥ अवि नाम मेष (मेंढा) का है। जैसे मेंढा पालनेवालेकोही मारता है, उसी प्रकार जो उपदेशदाताकी ही निन्दा करते हैं और समय आनेपर घात तक करने को उद्यत रहते हैं उन्हें अविके समान श्रोता समझना चाहिये ॥ ६ ॥ जाहक नाम सेही आदि अनेक जीवोंका है पर प्रकृतमें जोंक अर्थ ग्रहण किया गया है। जैसे जोंकको स्तनपर भी लगावें तो भी वह दूध-न पीकर खून ही पीती है, इसी प्रकार जो उत्तम आचार्य या गुरुके समीप रहकर भी उत्तम तत्त्वको तो ग्रहण नहीं करते, पर अधम तत्त्वको ही ग्रहण करते हैं वे जोंकके समान श्रोता हैं ॥ ७ ॥ शुक नाम तोतेका है। तोतेको जो कुछ सिखाया जाता है वह सीख तो जाता है पर उसे यथार्थ अर्थ प्रतिभासित नहीं होता, उसी प्रकार उपदेश स्मरणकर लेनेपर भी जिनके हृदयमें भाव-भासना नहीं होती है वे शुकसमान श्रोता हैं ॥ ८ ॥ मट्टी जैसे जलके संयोग मिलने पर तो कोमल हो जाती है, पर जलके अभावमें पुनः कठोर हो जाती है, इसी प्रकार जो उपदेश मिलनेतक तो मृदु-परिणामी बने रहते हैं और बादमें पूर्ववत् ही कठोर-हृदय हो जाते हैं वे मट्टीके समान श्रोता है ॥ ९ ॥ मशक अर्थात् मच्छर पहले कानोंमें आकर गुनगुनाता है, चरणोंमें गिरता है किंतु अवसर पाते ही काट खाता है, उसी प्रकार जो श्रोता पहले तो गुरु या उपदेश-दाताकी प्रशंसा करेंगे, चरण-वन्दना भी करेंगे, पर अवसर आते ही काटे बिना न रहेंगे उन्हें मशकके समान श्रोता समझना चाहिये ॥१०॥ उक्त सभी प्रकारके श्रोता अयोग्य हैं, उन्हें उपदेश देना व्यर्थ हैं।

किसी किसी शास्त्रमें उक्त नामोंमें तथा अर्थमें भेद भी देखनेमें आता है किंतु कुश्रोताका भाव यहां पर अभीष्ट है।

इदि वयणादो जहाछंदाईणं विज्जा-दाणं संसार-भय-वद्धणमिदि चिंतेऊण सुहसुमिण-दंसणेणेव अवगय-पुरिसंतरेण धरसेण-भयवदा पुणरवि ताणं परिक्खा काउमाढत्ता 'सुपरिक्खा हियय-णिव्वुइकरेत्ति'। तदो ताणं तेण दो विज्जाओ दिण्णाओ[1]। तत्थ एया अहियक्खरा, अवरा विहीणक्खरा। एदाओ छट्ठोववासेण साहेहु त्ति। तदो ते सिद्धविज्जा विज्जा-देवदाओ पेच्छंति, एया उद्दंतुरिया अवरेया काणिया। एसो देवदाणं सहावो ण होदि त्ति चिंतेऊण मंत-व्वायरण-सत्थ-कुसलेहिं हीणाहियक्खराणं छुहणावणयण-विहाणं काऊण पढंतेहि दो वि देवदाओ सहाव-रूव-ट्ठियाओ दिट्ठाओ। पुणो तेहि धरसेण-भयवंतस्स जहावित्तेण विणएण णिवेदिदे सुट्ठु तुट्ठेण धरसेण-भडारएण सोम्म[2]-तिहि-णक्खत्त-वारे गंथो पारद्धो। पुणो कमेण वक्खाणंतेण तेण आसाढ[3]-मास-सुक्क-पक्ख-एक्कारसीए पुव्वण्हे गंथो समाणिदो। विणएण गंथो समाणिदो त्ति तुट्ठेहि भूदेहि तत्थेयस्स महदी पूजा पुप्फ-बलि-संख-

---

इस वचनके अनुसार यथाछन्द अर्थात् स्वच्छन्दतापूर्वक आचरण करनेवाले श्रोताओंको विद्या देना संसार और भयका ही बढ़ानेवाला है, ऐसा विचार कर, शुभ स्वप्नके देखने मात्रसे ही यद्यपि धरसेन भट्टारकने उन आये हुए दोनों साधुओंके अन्तर अर्थात् विशेषताको जान लिया था, तो भी फिरसे उनकी परीक्षा लेनेका निश्चय किया, क्योंकि, उत्तम प्रकारसे ली गई परीक्षा हृदयमें संतोषको उत्पन्न करती है। इसके बाद धरसेनाचार्यने उन दोनों साधुओंको दो विद्याएं दीं। उनमेंसे एक अधिक अक्षरवाली थी और दूसरी हीन अक्षरवाली थी। दोनोंको दो विद्याएं देकर कहा कि इनको षष्ठभक्त उपवास अर्थात् दो दिनके उपवाससे सिद्ध करो। इसके बाद जब उनको विद्याएं सिद्ध हुईं, तो उन्होंने विद्याकी अधिष्ठात्री देवताओंको देखा कि एक देवीके दांत बाहर निकले हुए हैं और दूसरी कानी है। 'विकृतांग होना देवताओंका स्वभाव नहीं होता है' इस प्रकार उन दोनोंने विचारकर मन्त्र-संबन्धी व्याकरण-शास्त्रमें कुशल उन दोनोंने हीन अक्षरवाली विद्यामें अधिक अक्षर मिलाकर और अधिक अक्षरवाली विद्यामेंसे अक्षर निकालकर मन्त्रको पढ़ना अर्थात् फिरसे सिद्ध करना प्रारम्भ किया। जिससे वे दोनों विद्या-देवताएं अपने स्वभाव और अपने सुन्दर रूपमें स्थित दिखलाई पड़ीं। तदनन्तर भगवान् धरसेनके समक्ष, योग्य विनय-सहित उन दोनोंके विद्या-सिद्धिसंबन्धी समस्त वृत्तान्तके निवेदन करनेपर 'बहुत अच्छा' इस प्रकार संतुष्ट हुए धरसेन भट्टारकने शुभ तिथि, शुभनक्षत्र और शुभवारमें ग्रन्थका पढ़ाना प्रारम्भ किया। इसतरह क्रमसे व्याख्यान करते हुए धरसेन भगवान्से उन दोनोंने आषाढ़ मासके शुक्लपक्षकी एकादशीके पूर्वाण्हकालमें ग्रन्थ समाप्त किया। विनयपूर्वक ग्रन्थ समाप्त किया, इसलिए संतुष्ट हुए भूत जातिके व्यन्तर देवोंने उन दोनोंमेंसे एककी

---

१. सुपरीक्षा हृन्निर्वृतिकरीति सञ्चिन्त्य दत्तवान् सूरिः। साधयितुं विद्ये द्वे हीनाधिकवर्णसंयुक्ते ॥
इन्द्र. श्रुता. ११५.

२. मु. सोम। ३. मु. वक्खाणंतेण आसाढ।

तूर-रव-संकुला कदा। तं दट्ठूण तस्स 'भूदबलि' त्ति भडारएण णामं कयं। अवरस्स वि भूदेहि पूजिदस्स अत्थ-वियत्थ-ट्ठिय-दंत-पंतिमोसारिय भूदेहि समीकय-दंतस्स 'पुप्फयंतो' त्ति णामं कयं।

पुणो ते[1] तद्दिवसे[2] चेव पेसिदा संता 'गुरु-वयणमलंघणिज्जं' इदि चिंतिऊण आगदेहि अंकुलेसरे वरिसा-कालो कओ। जोगं समाणीय जिणवालियं[3] दट्ठूण पुप्फयंताइरियो वणवासि[4]-विसयं गदो। भूदबलि-भडारओ वि दमिल-विसयं[5] गदो। तदो पुप्फयंताइरिएण जिणवालिदस्स दिक्खं दाऊण विसदि[6]-सुत्ताणि[7] करिय पढाविय पुणो सो भूदबलि-भयवंतस्स पासं पेसिदो। भूदबलि-भयवदा जिणवालिद-पासे दिट्ठ-विसदि-सुत्तेण अप्पाउओ त्ति अवगय-जिणवालिदेण महाकम्म-पयडि-पाहुडस्स वोच्छेदो होहदि त्ति समुप्पण्ण-बुद्धिणा पुणो दव्व-पमाणाणुगममादिं काऊण गंथ-रचणा कदा। तदो एयं खंड-सिद्धंतं पडुच्च भूदबलि-पुप्फयंताइरिया वि कत्तारो उच्चंति।

पुष्प, बलि तथा शंख और तूर्य जातिके वाद्यविशेषके नादसे व्याप्त बडी भारी पूजा की। उसे देखकर धरसेन भट्टारकने उनका 'भूतबलि' यह नाम रक्खा। तथा जिनकी भूतोंने पूजा की है, और अस्त-व्यस्त दन्तपंक्तिको दूर करके भूतोंने जिनके दांत समान कर दिये हैं ऐसे दूसरेका भी धरसेन भट्टारकने 'पुष्पदन्त' नाम रक्खा।

तदनन्तर उसी दिन वहांसे भेजे गये उन दोनोंने 'गुरुके वचन अर्थात् गुरुकी आज्ञा अलंघनीय होती है' ऐसा विचार कर आते हुए अंकलेश्वर (गुजरात) में वर्षाकाल बिताया। वर्षायोगको समाप्त कर और जिनपालितको देखकर (उसके साथ) पुष्पदन्त आचार्य तो वनवासि देशको चले गये और भूतबलि भट्टारक तमिल देशको चले गये। तदनन्तर पुष्पदन्त आचार्यने जिनपालितको दीक्षा देकर, वीस प्ररूपणा गर्भित सत्प्ररूपणाके सूत्र बनाकर और जिनपालितको पढ़ाकर अनन्तर उन्हें भूतबलि आचार्यके पास भेजा। तदनन्तर जिन्होंने जिनपालितके पास वीस प्ररूपणान्तर्गत सत्प्ररूपणाके सूत्र देखे हैं और पुष्पदन्त आचार्य अल्पायु हैं। इसप्रकार जिन्होंने जिनपालितसे जान लिया है, अतएव महाकर्मप्रकृतिप्राभृतका विच्छेद हो जायगा इसप्रकार उत्पन्न हुई है बुद्धि जिनको ऐसे भगवान् भूतबलिने द्रव्यप्रमाणानुगमको आदि लेकर ग्रन्थ-रचना की। इसलिये इस खण्डसिद्धान्तकी अपेक्षा भूतबलि और पुष्पदन्त आचार्य भी श्रुतके कर्ता कहे जाते हैं।

---

१. मु. पुणो तद्दिवसे। २. 'द्वितीयदिवसे' इति पाठः। इन्द्र. श्रुता. १२९.

३. 'स्वभागिनेयं' इति विशेषः। इन्द्र. श्रुता. १३४. ४. मु. वणवास।

५. मु. दमिलदेसं। अ. प्रतिमें देसं पाठः ६. मु. तथा अ. प्रतिमें वीसदि।

७. वाञ्छन् गुणजीवादिकविंशतिविधसूत्रसत्प्ररूपणया। युक्तं जीवस्थानाद्यधिकारं व्यरचयत्सम्यक्॥ इन्द्र. श्रुता. १३५.

तदो मूल-तंत-कत्ता वड्ढमाण-भडारओ, अणुतंत-कत्ता गोदम-सामी, उवतंतकत्तारा भूदबलि-पुप्फयंतादयो वीय-राय-दोस-मोहा मुणिवरा। किमर्थं कर्ता प्ररूप्यते ? शास्त्रस्य प्रामाण्यप्रदर्शनार्थम्[1] 'वक्तृप्रामाण्याद् वचनप्रामाण्यम्' इति न्यायात्।

संपहि जीवट्ठाणस्स[2] अवयारो उच्चदे। तं जहा– सो वि चउव्विहो उवक्कमो णिक्खेवो णयो अणुगमो चेदि। तत्थ उवक्कमं भणिस्सामो। उपक्रम इत्यर्थमात्मनः उप समीपं क्राम्यति करोतीत्युपक्रमः[3]। सो वि उवक्कमो पंचविहो–आणुपुव्वी णामं पमाणं वत्तव्वदा अत्थाहियारो चेदि। उत्तं च––

तिविहा य आणुपुव्वी दसहा णामं च छव्विहं माणं।
वत्तव्वदा य तिविहा तिविहो अत्थाहियारो वि ॥ ६४ ॥ इदि।

इसतरह मूलग्रन्थकर्ता वर्द्धमान भट्टारक हैं, अनुग्रन्थकर्ता गौतमस्वामी हैं और उपग्रन्थकर्ता राग, द्वेष और मोहसे रहित भूतबलि, पुष्पदन्त इत्यादि अनेक आचार्य हैं।

शंका––– यहां पर कर्ताका प्ररूपण किसलिये किया गया है ?

समाधान––– शास्त्रकी प्रमाणताके दिखानेके लिये यहां पर कर्ताका प्ररूपण किया गया है, क्योंकि, 'वक्ताकी प्रमाणतासे ही वचनोंमें प्रमाणता आती है' ऐसा न्याय है।

अब जीवस्थानके अवतारका प्रतिपादन करते हैं। अर्थात् पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्यने जीवस्थान, खुद्दाबन्ध, बन्धस्वामित्व, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड और महाबन्ध नामक जिस षट्खण्डागमकी रचना की। उनमेंसे, प्रकृतमें यहां जीवस्थान नामके प्रथम खण्डकी उत्पत्तिका क्रम कहते हैं। वह इसप्रकार है––

वह अवतार चार प्रकारका है– उपक्रम, निक्षेप, नय और अनुगम। उन चारोंमें पहले उपक्रमका निरूपण करते हैं, जो अर्थको अपने समीप करता है उसे उपक्रम कहते हैं। उस उपक्रमके पांच भेद हैं– आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता, और अर्थाधिकार। कहा भी है–

आनुपूर्वी तीन प्रकारकी है, नामके दश भेद हैं, प्रमाणके छह भेद हैं, वक्तव्यताके तीन भेद हैं और अर्थाधिकारके भी तीन भेद हैं ॥६४॥

---

१. इयमूलतंतकत्ता सिरिवीरो इंदभूदि विप्पवरे। उवतंते कत्तारो अणुतंते सेस आइरिया ॥ णिण्णट्ठरायदोसा महेसिणो दिव्वसुत्तकत्तारो। किं कारणं पभणिदा कहिदुं सुत्तस्स पामण्णं ॥ ति. प. १, ८०,-८१.

२. पुष्पदन्तभूतबलिभ्यां प्रणीतस्यागमस्य नाम 'षट्खण्डागमः' तस्येमे षट् खण्डाः– १ जीवस्थानं २ खुद्दाबन्धः ३ बन्धस्वामित्वविचयः ४ वेदनाखण्डः ५ वर्गणाखण्डः ६ महाबन्धश्चेति। एषां षण्णां खण्डानां मध्ये प्रथमतस्तावज्जीवस्थाननामकप्रथमखण्डस्यावतारो निरूप्यते।

३. प्रकृतस्यार्थतत्त्वस्य श्रोतृबुद्धौ समर्पणम्। उपक्रमोऽसौ विज्ञेयस्तथोपोद्घात इत्यपि ॥ आ. पु. २. १०३. सत्थस्सोवक्कमणं उवक्कमो तेण तम्मि व तओ वा। सत्थसमीवीकरणं आणयणं नासदेसम्मि ॥ वि. भा. ९१४.

पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी जत्थतत्थाणुपुव्वी चेदि तिविहा आणुपुव्वी । जं मूलादो परिवाडीए उच्चदे सा पुव्वाणुपुव्वी[1] । तिस्से उदाहरणं– ' उसहमजियं च वंदे[2] ' इच्चेवमादि । जं उवरीदो हेट्ठा परिवाडीए उच्चदि सा पच्छाणुपुव्वी[3] । तिस्से उदाहरणं––

एस करेमि य पणमं जिणवर-वसहस्स वड्ढमाणस्स ।
सेसाणं च जिणाणं सिव-सुह-कंखा विलोमेण[4] ॥ ६५ ॥ **इदि**

जमणुलोम-विलोमेहि विणा जहा तहा उच्चदि सा जत्थतत्थाणुपुव्वी[5] । तिस्से उदाहरणं––

गय-गवल-सजल-जलहर-परहुव-सिहि-गलय-भमर-संकासो ।
हरिउल-वंस-पईवो सिव-माउव-वच्छओ जयऊ ॥ ६६ ॥ **इच्चेवमादि ।**

पूर्वानुपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी और यथातथानुपूर्वी इसतरह आनुपूर्वीके तीन भेद हैं । जो वस्तुका विवेचन मूलसे परिपाटीद्वारा किया जाता है उसे पूर्वानुपूर्वी कहते हैं । उसका उदाहरण इसप्रकार है– ' ऋषभनाथकी वन्दना करता हूं, अजितनाथकी वन्दना करता हूं ' इत्यादि क्रमसे ऋषभनाथको आदि लेकर महावीरस्वामी पर्यन्त क्रमवार वन्दना करना सो वन्दनासंबन्धी पूर्वानुपूर्वी उपक्रम है । जो वस्तुका विवेचन ऊपरसे अर्थात् अन्तसे लेकर आदितक परिपाटी-क्रमसे (प्रतिलोम-पद्धतिसे) किया जाता है उसे पश्चादानुपूर्वी उपक्रम कहते है । जैसे––

मोक्ष-सुखकी अभिलाषासे यह मैं जिनवरोंमें श्रेष्ठ ऐसे वर्द्धमानस्वामीको नमस्कार करता हूं । और विलोमक्रमसे अर्थात् वर्द्धमानके बाद पार्श्वनाथको, पार्श्वनाथके बाद नेमिनाथको इत्यादि क्रमसे शेष जिनेन्द्रोंको भी नमस्कार करता हूं ॥ ६५ ॥

जो कथन अनुलोम और प्रतिलोम क्रमके विना जहां कहींसे भी किया जाता है उसे यथातथानुपूर्वी कहते हैं । जैसे––

हाथी, अरण्यभैंसा, जलपरिपूर्ण और सघन मेघ, कोयल, मयूरका कण्ठ और भ्रमरके

---

१. जं जेण कमेण सुत्तकारेहि ठइदमुप्पण्णं वा तस्स तेण कमेण गणणा पुव्वाणुपुव्वी णाम । जयध. अ. पृ. ३.

२. उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च । पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥ सुविहिं च पुप्फदंतं सीयलसेयं च वासुपुज्जं च । विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ॥ कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च मुणिसुव्वयं च । णमिं वंदामि अरिट्ठं णेमिं तह पासवड्ढमाणं च ॥ एवमए अभिथुहिया विहुयरयमला पहीणजरमरणा । चउवीसं वि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ॥ द. भ. पृ. ४.

३. तस्स विलोमेण गणणा पच्छाणुपुव्वी । जयध. अ. पृ. ३.

४. एस करेमि पणामं जिणवरवसहस्स वड्ढमाणं च । सेसाणं च जिणाणं सगणगणधराणं च सव्वेसिं ॥ मूलाचा. १०५.

५. जत्थ वा तत्थ वा अप्पणो इच्छिदमादिं कादूण गणणा जत्थतत्थाणुपुव्वी । जयध. अ. पृ. ३.

इदं पुण जीवट्ठाणं खंड-सिद्धंतं पडुच्च पुव्वाणुपुव्वीए ट्ठिदं छण्हं खंडाणं पढम-खंडं जीवट्ठाणमिदि । वेदणा-कसिण-पाहुड-मज्झादो अणुलोम-विलोम-कमेहि विणा जीवट्ठाणस्स संतादि-अहियारा अहिणिग्गया त्ति जीवट्ठाणं जत्थतत्थाणुपुव्वीए वि संठिदं । जीवट्ठाणे ण पच्छाणुपुव्वी संभवइ ।

णामस्स दस[1] ट्ठाणाणि भवंति । तं जहा, गोण्णपदे णोगोण्णपदे आदाणपदे पडिवक्खपदे अणादियसिद्धंतपदे पाधण्णपदे णामपदे पमाणपदे अवयवपदे संजोगपदे चेदि ।

गुणानां भावो गौण्यम् । तद् गौण्यं पदं स्थानमाश्रयो येषां नाम्नां तानि गौण्यपदानि[2] । यथा, आदित्यस्य तपनो भास्कर इत्यादीनि नामानि । नोगौण्यपदं[3] नाम गुणनिरपेक्षमनन्वर्थमिति यावत् । तद्यथा, चन्द्रस्वामी सूर्यस्वामी इन्द्रगोप

समान वर्णवाले, हरिवंशके प्रदीप, और शिवादेवी माताके लाल ऐसे नेमिनाथ भगवान् जयवन्त हों ॥ ६६ ॥ इत्यादि यथातथानुपूर्वीका उदाहरण समझना चाहिये ।

यह जीवस्थान नामक शास्त्र खण्डसिद्धान्तकी अपेक्षा पूर्वानुपूर्वी क्रमसे लिखा गया है, क्योंकि, षट्खण्डागममें जीवस्थान प्रथम खण्ड है । वेदनाकषायप्राभृतके मध्यसे अनुलोम और विलोमक्रमके विना जीवस्थानके सत्, संख्या आदि अधिकार निकले हैं, इसलिये जीवस्थान यथातथानुपूर्वीमें भी गर्भित है । किंतु इस जीवस्थान खण्डमें केवल पश्चादानुपूर्वी संभव नहीं हैं ।

नाम-उपक्रमके दश भेद हैं । वे इसप्रकार हैं– गौण्यपद, नोगौण्यपद, आदानपद, प्रतिपक्षपद, अनादिसिद्धान्तपद, प्राधान्यपद, नामपद, प्रमाणपद, अवयवपद और संयोगपद ।

गुणोंके भावको गौण्य कहते हैं । जो पदार्थ गुणोंकी मुख्यतासे व्यवहृत होते हैं वे गौण्यपदार्थ हैं । वे गौण्य पदार्थ पद अर्थात् स्थान या आश्रय जिन नामोंके होते हैं उन्हें गौण्यपद-नाम कहते हैं । अर्थात् जिस संज्ञाके व्यवहारमें अपने विशेष गुणका आश्रय लिया जाता है उसे गौण्यपदनाम कहते हैं । जैसे, सूर्यकी तपन और भास् गुणकी अपेक्षा तपन और भास्कर इत्यादि संज्ञाएं हैं । जिन संज्ञाओंमें गुणोंकी अपेक्षा न हो, अर्थात् जो असार्थक नाम हैं उन्हें नोगौण्यपद-नाम कहते हैं । जैसे, चन्द्रस्वामी, सूर्यस्वामी, इन्द्रगोप इत्यादि नाम ।

---

१. से किं दसनामे पण्णत्ते ? तं जहा, गोण्णे नोगोण्णे आयाणपएणं पडिवक्खपएणं पहाणयाए अणाइअसिद्धतेणं नामेणं अवयवेणं संजोगेणं पमाणेणं । अनु. १, १२७.

२. से किं तं गोण्णे ? गोण्णे खमइ त्ति खमणो, तपइ त्ति तपणो, जलइ त्ति जलणो, पवइ त्ति पवणो । से त्तं गोणे । अनु. १, १२८.

३. नो गोणे अकुंतो सकुंतो अमुग्गो समुग्गो अलालं पलालं अकुलिया सकुलिया अमुद्दो समुद्दो नोपलं असइ त्ति पलासं, अमाति बाहए माइबाहए, अबीय वावए बीयावावए, नो इंदगोवइए त्ति इंदगोवे से त्तं नो गोणे । अनु. १, १२८.

इत्यादीनि नामानि । आदानपदं[1] नाम आत्तद्रव्यनिबन्धनम् । नैतद्गुणनाम्नोऽन्तर्भवति, तत्रादानादेयत्वविवक्षाभावात् । भावे वा न तद्गुणाश्रितम्, आदानपदनाम्नोऽन्तर्भावात् । पूर्णकलश इत्येतदादानपदम् । नादानपदम् । तद्यथा– घटस्य कलश इति संज्ञा नात्तद्रव्यादिमाश्रिता, तस्यास्तथाविधविवक्षामन्तरेण प्रवृत्तायाः समुपलम्भात् । न पूर्णशब्दोऽपि, तस्य पर्याप्तवाचकत्वेन गुणनाम्नोऽन्तर्भावात् । नोभयसमासोऽपि, तस्य भावसंयोगेऽन्तर्भावादिति ? न, जलादिद्रव्याधारत्वविवक्षायां पूर्णकलशशब्दस्यादान-

---

विशेषार्थ— जिन मनुष्योंके चन्द्रस्वामी आदि नाम रक्खे जाते हैं उनमें चन्द्र आदिका न तो स्वामीपना पाया जाता है और न इन्द्रके वे रक्षक ही होते हैं । केवल ये नाम रूढ़िसे रक्खे जाते हैं । इनमें गुणादि की कुछ भी प्रधानता नहीं पायी जाती है, इसलिये इन्हें नोगौण्यपदनाम कहते हैं ।

ग्रहण किये गये द्रव्यके निमित्तसे जो नाम व्यवहारमें आते हैं, अर्थात् जिनमें द्रव्यके निमित्तकी अपेक्षा होती है उन्हें आदानपदनाम कहते हैं ।

विशेषार्थ— आदानपदनामोंमें, संयोगको प्राप्त हुए द्रव्यके निमित्तसे उत्पन्न हुई अवस्थाविशेषकी वाचक संज्ञाएं ली जाती हैं । अर्थात् आदान-आदेय भावकी मुख्यतासे जो नाम प्रचलित होते हैं उन्हें आदानपदनाम कहते हैं ।

इस आदानपदनामका गुणनाममें अन्तर्भाव नहीं हो सकता है, क्योंकि, गुणनामोंमें आदान-आदेय भावकी विवक्षा नहीं रहती है । यदि गुणनामोंमें भी आदान-आदेय भावकी विवक्षा मान ली जाय तो गौण्यपदनाम गुणाश्रित नहीं रह सकते हैं, क्योंकि, आदान-आदेय भावकी मुख्यतासे उनका आदानपदनामोंमें अन्तर्भाव हो जायगा ।

'पूर्णकलश' इस पदको आदानपदनाम समझना चाहिये ।

शंका— 'पूर्णकलश' यह आदानपदनाम नहीं हो सकता है । इसका खुलासा इस-प्रकार है– घटकी 'कलश' यह संज्ञा ग्रहण किए गये किसी द्रव्यादिके आश्रयसे नहीं है, क्योंकि 'कलश' इस संज्ञाकी द्रव्यादिकके निमित्तकी विवक्षाके विना ही प्रवृत्ति देखी जाती है । इसी-तरह 'पूर्ण' यह शब्द भी आदानपदनाम नहीं हो सकता है, क्योंकि, 'पूर्ण' यह शब्द पर्याप्तका वाचक होनेसे उसका गौण्यपदनाममें अन्तर्भाव हो जाता है । पूर्ण और कलश इन दोनों पदोंका समास भी आदानपदनाम नहीं हो सकता है, क्योंकि, उसका भावसंयोगमें अन्तर्भाव हो जाता है ?

समाधान— ऐसी शंका करना उचित नहीं है, क्योंकि, जलादि द्रव्यके आधारपनेकी विवक्षामें 'पूर्णकलश' इस शब्दको आदानपदनाम माना गया है ।

---

१. से किं तं आयाणपदेणं ? धम्मो मंगलं, चूलिया चाउरंगिज्जं असंखयं आवंती तत्थिज्जं अद्दइज्जं जण्णइज्जं पुरिसइज्जं एल्लइज्जं वीरयं धम्मो मग्गो समोसरणं गंथो जं महियं से त्तं आयाणपएणं, । अनु. १, १२८.

पदत्वाभ्युपगमात् । एवमविधवेत्यपि चालयित्वा व्यवस्थापनीयम् । अक्लिष्टानि कानि पुनरादानपदनामानि ? वधूरन्तर्वत्नीत्यादीनि, आत्तभर्तृधृतापत्यनिबन्धनत्वात् । प्रतिपक्षपदानि[1] कुमारी बन्ध्येत्येवमादीनि, आदानपदप्रतिपक्षनिबन्धनत्वात् । अनादि-सिद्धान्तपदानि धर्मास्तिरधर्मास्तिरित्येवमादीनि । अपौरुषेयत्वतोऽनादिः सिद्धान्तः, स पदं स्थानं यस्य तदनादिसिद्धान्तपदम्[2] । प्राधान्यपदानि[3] आम्रवनं निम्बवन-मित्यादीनि, वनान्तः सत्स्वप्यन्येष्वविवक्षितवृक्षेषु विवक्षाकृतप्राधान्यचूतपिचुमन्द-

---

विशेषार्थ— जलादि द्रव्य आदान है और कलश आदेय है। इसलिये 'पूर्णकलश' इस शब्दका आदानपदनाममें अन्तर्भाव होता है। यह बात गौण्यपदनाममें नहीं है, इसलिये उसमें उसका अन्तर्भाव नहीं होसकता है यदि गौण्यपदमें इसप्रकारकी विवक्षा की जायगी तो वह गौण्यपद न कहलाकर आदानपदकी कोटिमें आ जायगा।

इसीप्रकार 'अविधवा' इस पदका भी विचार कर आदानपदनाममें अन्तर्भाव कर लेना चाहिये।

शंका— अक्लिष्ट अर्थात् सरल आदानपदनाम कौनसे हैं ?

समाधान— वधू और अन्तर्वत्नी इत्यादि सरल आदानपदनाम समझना चाहिये, क्योंकि, स्वीकृत पतिकी अपेक्षा वधू और धारण किये गये गर्भस्थ पुत्रकी अपेक्षा 'अन्तर्वत्नी' संज्ञा प्रचलित है।

कुमारी, वन्ध्या इत्यादिक प्रतिपक्षपदनाम हैं, क्योंकि, आदानपदोंमें ग्रहण किये गये दूसरे द्रव्यकी निमित्तता कारण पड़ती है और यहां पर अन्य द्रव्यका अभाव कारण पड़ता है। इसलिये आदानपदनामोंके प्रतिपक्ष-कारणक होनेसे कुमारी या वन्ध्या इत्यादि पद प्रतिपक्ष-पदनाम जानना चाहिये।

अनादिकालसे प्रवाहरूपसे चले आये सिद्धान्तवाचक पदोंको अनादिसिद्धान्तपदनाम कहते हैं। जैसे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय इत्यादि। अपौरुषेय होनेसे सिद्धान्त अनादि है। वह सिद्धान्त जिस नामरूप पदका आश्रय हो उसे अनादिसिद्धान्तपद कहते हैं।

बहुतसे पदार्थोंके होने पर भी किसी एक पदार्थकी बहुलता आदि द्वारा प्राप्त हुई प्रधानतासे जो नाम बोले जाते है उन्हें प्राधान्यपदनाम कहते हैं। जैसे आम्रवन निम्बवन

---

१. से किं तं पडिवक्खपएणं ? पडिवक्खपदेणं नवेसु गामागारणगरखेडकब्बडमंडवदोणमुहपट्टणास-मसंवाहसंनिवेसेसु संनिविसमाणेसु असिवा सिवा, अग्गी सीअलो, विसं महुरं, कल्लालघरेसु अंविलं साउअं, जे रत्तए से अलत्तय, जे लाउए से अलाउए, जे सुंभए से कुसुंभए, आलवंते विवलीअभासए, से त्तं पडिवक्खपएणं। अनु. १, १२८.

२. अनादियसिद्धंतेणं, धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पुग्गलत्थिकाए अद्धासमए से त्तं अनादियसिद्धंतेणं। अनु. १, १२८.

३. पाहण्णयाए असोगवणे सत्तवणवगे चंपगवणे चूअवणे नागवणे पुन्नागवणे उच्छुवणे दक्खवणे सालिवणे से तं पाहण्णयाए। अनु. १, १२८.

निबन्धनत्वात् । नामपदं[1] नाम गौडोऽन्ध्रो द्रमिल इति, गौडान्ध्रद्रमिलभाषानामधामत्वात् । प्रमाणपदानि[2] शतं सहस्रं द्रोणः खारी पलं तुला कर्षादीनि, प्रमाणनाम्नां प्रमेयेषूपलम्भात् ।

अवयवपदानि[3] यथा । सोऽवयवो द्विविधः, उपचितोऽपचित इति । तत्रोपचितावयवनिबन्धनानि यथा, गलगण्डः शिलीपदः लम्बकर्ण इत्यादीनि नामानि । अवयवापचयनिबन्धनानि यथा छिन्नकर्णः छिन्ननासिक इत्यादीनि नामानि । संयोगपदानि[4] यथा । स संयोगश्चतुर्विधो द्रव्यक्षेत्रकालभावसंयोगभेदात् । द्रव्यसंयोगपदानि यथा– इभ्यः गौथः दण्डी छत्री गर्भिणी इत्यादीनि, द्रव्यसंयोगनिबन्धनत्वात् तेषां ।

इत्यादि । वनमें अन्य अविवक्षित वृक्षोंके रहने पर भी विवक्षासे प्रधानताको प्राप्त आम और नीमके वृक्षोंके कारण आम्रवन और निम्बवन आदि नाम व्यवहारमें आते हैं ।

गौड़, आन्ध्र, द्रमिल इत्यादि नामपद नाम हैं । ये गौड़ आदि नाम गौड़ी, आन्ध्री और द्रमिल भाषाओंके नाम के आधारभूत हैं ।

गणना अथवा मापकी अपेक्षासे जो संज्ञाएं प्रचलित हैं उन्हें प्रमाणपदनाम कहते हैं । जैसे, सौ, हजार, द्रोण, खारी, पल, तुला, कर्ष इत्यादि । ये सब प्रमाणनाम प्रमेयोंमें पाये जाते हैं, अर्थात् इन नामोंके द्वारा तत्प्रमाण वस्तुका बोध होता है ।

अब अवयवपदनाम कहते हैं । अवयव दो प्रकारके होते हैं– उपचितावयव और अपचितावयव । रोगादिके निमित्त मिलने पर किसी अवयवके बढ़ जानेसे जो नाम बोले जाते हैं उन्हें उपचितावयवपदनाम कहते हैं । जैसे, गलगंड, शिलीपद, लम्बकर्ण इत्यादि । जो नाम अवयवोंके अपचय अर्थात् उनके छिन्न हो जानेके निमित्तसे व्यवहारमें आते हैं उन्हें अपचितावयवपदनाम कहते हैं । जैसे, छिन्नकर्ण, छिन्ननासिक इत्यादि नाम ।

अब संयोगपदनामका कथन करते हैं । द्रव्यसंयोग, क्षेत्रसंयोग, कालसंयोग और भावसंयोग के भेदसे संयोग चार प्रकारका है । इभ्य, गौथ, दण्डी, छत्री, गर्भिणी इत्यादि द्रव्यसंयोगपदनाम हैं, क्योंकि, धन, गूथ, दण्डा, छत्ता इत्यादि द्रव्यके संयोगसे ये नाम व्यवहारमें

---

१. नामेणं पिउपिआमहस्स नामेणं उन्नामिज्जइ से त्तं णामेणं । अनु. १, १२८.

२. पमाणेणं चउव्विहे पण्णत्ते । तं जहा, नामपमाणे ठवणप्पमाणे दव्वपमाणे भावपमाणे । अनु. १, १३३.

३. अवयवेणं, सिंगी सिही विसाणी दाढी पक्खी खरी नही वाली । दुपय चउप्पय बहुपय लंगूली केसरी कउही परियरं-बंधेण भडं जाणिज्जा महिलिअं निवसणेणं सित्थेण दोणवायं कविं च एक्काए गाहाए । से त्तं अवयवेणं । अनु. १, १२८.

४. से किं तं संजोएणं ? संजोगे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा, दव्वसंजोगे, खेत्तसंजोगे, कालसंजोगे, भावसंजोगे । से किं तं दव्वसंजोगे ? दव्वसंजोगे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा, सचित्ते अचित्ते, मीसए । से किं त्तं सचित्ते ? सचित्ते गोहिं गोमिए, महिसीहिं महिसए, उरणीहिं उरणीए, उट्टीहिं उट्टीवाले, से तं सचित्ते । से

नासिपरश्वादयः, तेषामादानपदेऽन्तर्भावात् । सहचरितत्वविवक्षायां भवन्तीति चेन्न, सहचरितत्वविवक्षायां तेषां नामपदनाम्नोऽन्तर्भावात् । क्षेत्रसंयोगपदानि[1], माथुरः वालभः दाक्षिणात्यः औदीच्य इत्यादीनि, यदि नामत्वेनाविवक्षितानि भवन्ति । कालसंयोगपदानि[2] यथा– शारदः वासन्तक इत्यादीनि । न वसन्तशरद्धेमन्तादीनि, तेषां नामपदेऽन्तर्भावात् । भावसंयोगपदानि[3]– क्रोधी मानी मायावी लोभीत्यादीनि ।

आते हैं। असि, परशु इत्यादि द्रव्यसंयोगपदनाम नहीं हैं, क्योंकि, उनका आदानपदमें अन्तर्भाव होता है।

शंका— सहचारीपनेकी विवक्षामें असि, परशु आदिका संयोगपदनाममें अन्तर्भाव हो जायगा ?

समाधान— ऐसा नहीं है, क्योंकि, सहचारीपनेकी विवक्षा होने पर उनका नामपदमें अन्तर्भाव हो जाता है।

माथुर, वालभ, दाक्षिणात्य और औदीच्य इत्यादि क्षेत्रसंयोगपदनाम हैं, क्योंकि, मथुरा आदि क्षेत्रके संयोगसे माथुर आदि संज्ञाएँ व्यवहारमें आती हैं। जब माथुर आदि संज्ञाएँ नामरूपसे विवक्षित न हों तभी उनका क्षेत्रसंयोगपदमें अन्तर्भाव होता है, अन्यथा नहीं।

शारद, वासन्तक इत्यादि कालसंयोगपदनाम हैं, क्योंकि, शरद् और वसन्त ऋतुके संयोगसे ये संज्ञाएं व्यवहारमें आती हैं। किंतु वसन्त, शरद्, हेमन्त इत्यादि संज्ञाओंका कालसंयोगपदनामोंमें ग्रहण नहीं होता है, क्योंकि, उनका नामपदमें अन्तर्भाव हो जाता है।

क्रोधी, मानी, मायावी और लोभी इत्यादि नाम भावसंयोगपद हैं, क्योंकि, क्रोध मान, माया और लोभ आदि भावोंके निमित्तसे ये नाम व्यवहारमें आते हैं। किंतु जिनमें

किं तं अचित्ते ? अचित्ते छत्तेण छत्ती, दंडेण दंडी, पडेण पडी, घडेण घडी, कडेण कडी से तं अचित्ते। से किं तं मीसए ? मीसए हलेणं हालिए, सगडेणं सागडिए, रहेणं रहिए, नावाए नाविए, से त्तं दव्व- संजोगे।

अनु. १, १२९.

१. से किं तं खेत्तसंजोगे ? भारहे, एरवए, हेमए, एरण्णवए, हरिवासए, रम्मगवासए, देवकुरुए, उत्तरकुरुए, पुव्वविदेहए अपरविदेहए। अहवा मागहे, मालवए, सोरट्ठए, मरहट्ठए, कुंकुणए, से त्तं खेत्तसंजोगे। अनु. १, १३०.

२. से किं तं कालसंजोगे ? सुसमसुसमाए, सुसमाए, सुसमदुसमाए, दुसमसुसमाए, दुसमाए, दुसमदुसमाए, । अहवा पावसए, वासारत्तए, सरदए, हेमंतए, वसंतए, गिम्हए, से त्तं कालसंजोगे। अनु. १, १३१.

३. से किं तं भावसंजोगे ? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा, पसत्थे अ अपसत्थे अ। से किं तं पसत्थे ? णाणेणं णाणी, दंसणेणं दंसणी, चरित्तेणं चरित्ती से तं पसत्थे ? से किं तं अपसत्थे ? कोहेणं कोही, माणेणं माणी, मायाए मायी, लोहेणं लोही से तं अपसत्थे, से तं भावसंजोगे। से त्तं संजोएणं। अनु. १, १३२.

न शीलसादृश्यनिबन्धनयमसिंहाग्निरावणादिनामानि[1], तेषां नामपदेऽन्तर्भावात् । न चैतेभ्यो व्यतिरिक्तं नामास्ति, अनुपलम्भात्[2] ।

तत्थेदस्स जीवट्ठाणस्स णामं किं पदं ? जीवाणं ट्ठाण-वण्णणादो जीवट्ठाणमिदि गोण्णपदं । मंगलादिसु छसु अहियारेसु वक्खाणिज्जमाणेसु णामं वुत्तमेव । पुणो

स्वभावकी सदृशता कारण है ऐसी यम, सिंह, अग्नि और रावण आदि संज्ञायें भावसंयोगपदरूप नहीं हो सकती है, क्योंकि, उनका नामपदमें अन्तर्भाव होता है । उक्त दश प्रकारके नामोंसे भिन्न और कोई नामपद नहीं है, क्योंकि, व्यवहारमें इनके अतिरिक्त अन्य नाम नहीं पाये जाते हैं ।

विशेषार्थ–– यतिवृषभाचार्यने कषायप्राभृतमें नामके केवल छह भेद बताये हैं । वे ये हैं, गौण्यपद, नोगौण्यपद, आदानपद, प्रतिपक्षपद, अपचयपद और उपचयपद । पूर्वमें जो नामके दश भेद कह आये हैं । उनमेंसे, यहां पर अनादिसिद्धान्तसंबन्धी गुणसापेक्ष नामोंका गौण्यपद और आदानपदमें तथा गुणनिरपेक्ष नामोंका नोगौण्यपदमें अन्तर्भाव किया है । प्राधान्यपदनामोंका गौण्यपद और आदानपदमें अन्तर्भाव किया है । प्रमाणपदनामोंका गौण्यपदमें, नामपदनामोंका नोगौण्यपदमें और संयोगपदनामोंका आदानपदमें अन्तर्भाव किया है । अवयवपदनामोंका उपचितपदनाम और अपचितपदनामोंमें अन्तर्भाव हो ही जाता है ।

शंका–– उन पूर्वोक्त दश प्रकारके नामपदोंमें यह जीवस्थान कौनसा नामपद है ?

समाधान–– जीवोंके स्थानोंका वर्णन करनेसे ‘ जीवस्थान ’ यह गौण्य नामपद है ।

शंका–– पहले मंगला.दक छह अधिकारोंका व्याख्यान करते समय नामपदका

१. मु. रावणादीनि नामानि ।

२. णामं छव्विहं ।। ३ ।। (कसायपाहुडचुण्णिसुत्तं) गोण्णपदे णोगोण्णपदे आदाणपदे पडिवक्खपदे अवचयपदे उवचयपदे चेदि । × × × पाधण्णपदणामाणं कथं तब्भावो? बलाहकाए च बहुसु वण्णेसु संतेसु धवला बलाहका लोकाओ त्ति जो णामणिद्देसो सो गोण्णपदे णिवददि गुणमुहेण दव्वम्मि पउत्तिदंसणादो । कयंबणिबादिअणेगेसु रुक्खेसु तत्थ संतेसु जो एगेण रुक्खेण णिबवणमिदि णिद्देसो सो आदाणपदे णिवददि वणेणात्तरुक्खसंबंधेणेदस्स पउत्तिदंसणादो । दव्वखेत्तकालभावसंजोयपदाणि रायासिधणुहरसुरलोकणयरभारहयअइरावयसायरवासंतयकोहीमाणी इच्चाईणि णामाणि वि आदाणपदे चेव णिवदंति इदमेदस्स अत्थि एत्थ वा इदमत्थि त्ति विवक्खाए एदेसिं णामाणं पवुत्तिदंसणादो । अवयवपदणामाणि अवचयउवचयपदणामेसु पविसंति, तेहिंतो तस्स भेदाभावादो । सुअणासा कंबुग्गीवा कमलदलणयणा चंदमुही बिंबोट्ठी इच्चाईणि तत्तो बाहिराणि अत्थि त्ति चे णेदाणि णामाणि समासंतभूदइवसद्दत्थसंबंधेण दव्वम्मि पउत्तीदो । अणादियसिद्धंतपदणामेसु जाणि अणादिगुणसंबंधमवेक्खिय पयट्टाणि जीवो णाणी चेयणावंतो त्ति ताणि गोण्णपदे आदाणपदे च णिवदंति । जाणि णोगोण्णपदाणि ताणि णोगोण्णपदणामेसु णिवदंति । पमाणपदणामाणि वि गोण्णपदे चेव णिवदंति समाणस्स दव्वगुणत्तादो अरविंदसंधस्स अरविंदसण्णा णामपदा । सा च अणादियसिद्धंतपदणामेसु पविट्ठा अणादिसरूवेण तस्स तत्थ पउत्तिदंसणादो । अणादियसिद्धंतपदणामाणं धम्मकालागासजीवपुग्गलादीणं छप्पदंतब्भावो पुव्वं परूविदा त्ति णेदाणिं परूविज्जदे । तदो णामं दसविहं चेव होदि त्ति एयंतग्गहो ण वत्तव्वो, किंतु छव्विहं पि होदि त्ति घेत्तव्वं । जयध. अ. पृ. ४–५.

गंथावदारे णामं उच्चदि त्ति ? न, पूर्वोद्दिष्टस्य नाम्नोऽनेन पदान्वेषणात् ।

पमाणं पंचविहं दव्व-खेत्त-काल-भाव-णय-प्पमाण-भेदेहि । तत्थ दव्व-पमाणं संखेज्जमसंखेज्जमणंतयं चेदि । खेत्त-पमाणं एय-पदेसादि । काल-पमाणं समयावलियादि । भाव-पमाणं पंचविहं, आभिणिबोहियणाणं सुदणाणं ओहिणाणं मणपज्जवणाणं केवलणाणं चेदि । णय-प्पमाणं सत्तविहं, णेगम-संगह-ववहारुज्जुसुद-सद्द-समभिरूढ-एवंभूद-भेदेहि । अहवा णय-प्पमाणमणेयविहं––

जावदिया वयण-वहा तावदिया चेव होंति णय-वादा ।
जावदिया णय-वादा तावदिया चेव होंति पर-समया[1] ॥६७॥ ॥इदि वयणादो॥

कथं नयानां प्रामाण्यं ? न, प्रमाणकार्याणां नयानामुपचारतः प्रामाण्याविरोधात् । एत्थ इदं जीवट्ठाणं एदेसु पंचसु पमाणेसु कदमं पमाणं ? भावपमाणं । तं पि पंचविहं तत्थ पंचविहेसु भाव-पमाणेसु सुद-भाव-पमाणं । कर्तृनिरूपणया

व्याख्यान कर ही आये हैं, फिर यहां पर ग्रन्थके प्रारम्भमें नामपदका व्याख्यान किसलिये किया गया है ?

समाधान–– ऐसा नहीं, क्योंकि, पूर्वमें कहे गये नामका दशप्रकारके नामपदोंमेंसे किसमें अन्तर्भाव होता है इसका इस कथनके द्वारा ही अन्वेषण किया है ।

द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, कालप्रमाण, भावप्रमाण और नयप्रमाणके भेदसे प्रमाणके पांच भेद हैं । उनमें संख्यात, असंख्यात और अनंत यह द्रव्यप्रमाण है । एक प्रदेश आदि क्षेत्रप्रमाण है । एक समय, एक आवली आदि कालप्रमाण है । आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानके भेदसे भावप्रमाण पांच प्रकारका हैं । नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूतनयके भेदसे नयप्रमाण सात प्रकारका है । अथवा नयप्रमाण आगे कहे गये वचनके अनुसार अनेक प्रकारका समझना चाहिये ।

जितने भी वचन-मार्ग है, उतने ही नयवाद, अर्थात् नयके भेद हैं । और जितने नयवाद हैं, उतने ही परसमय हैं ॥ ६७ ॥

शंका–– नयोंमें प्रमाणता कैसे संभव है, अर्थात् उनमें प्रमाणता कैसे आ सकती है ?

समाधान–– नहीं, क्योंकि, नय प्रमाणके कार्य हैं, इसलिये उपचारसे नयोंमें प्रमाणताके मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

विशेषार्थ–– शंकाकारका अभिप्राय यह है कि जब नय वस्तुके एक अंशमात्रको ग्रहण करता है सर्वांशरूपसे वस्तुको नहीं जानता है तब उसे प्रमाण कैसे माना जाय । इसका समाधान यह है कि प्रमाण द्वारा परिगृहीत वस्तुमें ही नयकी प्रवृत्ति होती है, इसलिये प्रमाणका कार्य होनेसे उपचारसे उनमें प्रमाणता आ जाती है ।

---

१. मु. चेव परसमया । गो. क. ८९४, स. त. १, ४७.

एवास्य प्रामाण्यं निरूपितमिति पुनरस्य प्रामाण्यनिरूपणमनर्थकमिति चेन्न, सामान्येन जिनोक्तत्वान्यथानुपपत्तितोऽवगतजीवस्थानप्रामाण्यस्य शिष्यस्य बहुषु भावप्रमाणेष्विदं जीवस्थानं श्रुतभावप्रमाणमिति ज्ञापनार्थत्वात् । अहवा पमाणं छव्विहं नामस्थापना-द्रव्यक्षेत्रकालभावप्रमाणभेदात् । तत्थ णाम-पमाणं पमाण-सण्णा । ट्ठवणा-पमाणं दुविहं, सब्भाव-ट्ठवणा-पमाणं असब्भाव-ट्ठवणा-पमाणमिदि । आकृतिमति सद्भाव-स्थापना । अनाकृतिमत्यसद्भावस्थापना । दव्वपमाणं दुविहं आगमदो णोआगमदो य । आगमदो पमाण-पाहुड-जाणओ अणुवजुत्तो, संखेज्जासंखेज्जाणंत-भेद-भिण्ण-सद्दागमो वा । णोआगमो तिविहो, जाणय[1]-सरीरं भवियं तव्वदिरित्तमिदि । जाणय-सरीरं [2]भवियं च गयं । तव्वदिरित्त-दव्व-पमाणं तिविहं, संखेज्जमसंखेज्जमणंतमिदि ।

शंका— उन पांच प्रकारके प्रमाणोंमेंसे 'जीवस्थान' यह कौनसा प्रमाण है ?

समाधान— यह भावप्रमाण है ।

मतिज्ञानादिरूपसे भावप्रमाणके भी पांच भेद हैं । इसलिये उन पांच प्रकारके भाव-प्रमाणोंमेंसे इस जीवस्थान शास्त्रको श्रुतभावप्रमाणरूप जानना चाहिये ।

शंका— पहले कर्ताका निरूपण कर आये है, इसलिये उसके निरूपण कर देनेसे ही इस शास्त्रकी प्रमाणताका निरूपण हो जाता है, अतः फिरसे उसकी प्रमाणताका निरूपण करना निरर्थक है ?

समाधान— ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्योंकि, यह जीवस्थान शास्त्र प्रमाण है, अन्यथा वह जिनेन्द्रदेवका कहा हुआ नहीं हो सकता था । इस प्रकार सामान्यरूपसे इस जीवस्थान शास्त्रकी प्रमाणताका निश्चय करनेवाले शिष्यको बहुत प्रकारके भाव प्रमाणोंमेंसे यह जीवस्थान शास्त्र श्रुतभावप्रमाणरूप है, इसतरह विशेष ज्ञान करानेके लिये यहां पर इसकी प्रमाणताका निरूपण किया है ।

अथवा, नामप्रमाण, स्थापनाप्रमाण, द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, कालप्रमाण और भाव-प्रमाणके भेदसे प्रमाण छह प्रकारका है ।

उनमें 'प्रमाण' ऐसी संज्ञाको नामप्रमाण कहते हैं । सद्भावस्थापनाप्रमाण और असद्भावस्थापनाप्रमाणके भेदसे स्थापनाप्रमाण दो प्रकारका है । तदाकारवाले पदार्थोंमें सद्भाव-स्थापना होती है और अतदाकारवाले पदार्थोंमें असद्भावस्थापना होती है । आगमद्रव्यप्रमाण और नोआगमद्रव्यप्रमाणके भेदसे द्रव्यप्रमाण दो प्रकारका है । प्रमाणविषयक शास्त्रको जाननेवाले परंतु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित जीवको आगमद्रव्यप्रमाण कहते हैं । अथवा, शब्दोंकी अपेक्षा संख्यातभेदरूप वक्ताओंकी अपेक्षा असंख्यातभेदरूप और तद्वाच्य अर्थकी अपेक्षा अनंत-भेदरूप ऐसे शब्दरूप आगमको आगमद्रव्यप्रमाण कहते हैं । ज्ञायकशरीर, भावि और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे नोआगमद्रव्यके तीन भेद समझने चाहिये ।

१. मु. जाणुग । २. मु.– सरीरं च भवियं ।

खेत्त-काल-पमाणाणि पुव्वं व वत्तव्वाणि। भाव-पमाणं पंचविहं—मदि-भाव-पमाणं सुद-भाव-पमाणं ओहि-भाव-पमाणं मणपज्जव-भाव-पमाणं केवलभाव-पमाणं चेदि। एत्थेदं जीवट्ठाणं भावदो सुद-भाव-पमाणं। दव्वदो संखेज्जासंखेज्जाणंतसरूव-सद्द-पमाणं।

वत्तव्वदा तिविहा—ससमयवत्तव्वदा परसमयवत्तव्वदा तदुभयवत्तव्वदा चेदि। जम्हि सत्थम्हि स-समयो चेव वण्णिज्जदि परूविज्जदि पण्णाविज्जदि तं सत्थं ससमयवत्तव्वं, तस्स भावो ससमयवत्तव्वदा। पर-समयो मिच्छत्तं जम्हि पाहुडे अणियोगे वा वण्णिज्जदि परूविज्जदि पण्णाविज्जदि तं पाहुडमणियोगो वा परसमय-वत्तव्वं, तस्स भावो परसमयवत्तव्वदा णाम। जत्थ दो वि परूवेऊण पर-समयो दूसिज्जदि स-समयो थाविज्जदि सा तदुभयवत्तव्वदा णाम भवदि। एत्थ पुण जीवट्ठाणे ससमयवत्तव्वदा, ससमयस्सेव परूवणादो। अत्थाधियारो तिविहो—पमाणं पमेयं तदुभयं चेदि। एत्थ जीवट्ठाणे एक्को चेय अत्थाहियारो, पमेय-परूवणादो। उवक्कमो गदो।

उनमें, ज्ञायकशरीर और भावि नोआगमद्रव्यका वर्णन पहले कर आये हैं। तद्व्यतिरिक्त-नोआगमद्रव्यप्रमाण संख्यातरूप, असंख्यातरूप और अनन्तरूप भेदकी अपेक्षा तीन प्रकारका है। क्षेत्रप्रमाण और कालप्रमाणका वर्णन पहलेके समान ही करना चाहिये। मतिभाव-प्रमाण, श्रुतभावप्रमाण, अवधिभावप्रमाण, मनःपर्ययभावप्रमाण और केवलभावप्रमाणके भेदसे भावप्रमाण पांच प्रकारका है। इनमेंसे यह ‘ जीवस्थान ’ नामका शास्त्र भावप्रमाणकी अपेक्षा श्रुतभावप्रमाणरूप है, और द्रव्यकी अपेक्षा संख्यात असंख्यात और अनन्तरूप शब्दप्रमाण है।

वक्तव्यता तीन प्रकारकी है– स्वसमयवक्तव्यता, परसमयवक्तव्यता और तदुभय-वक्तव्यता। जिस शास्त्रमें स्वसमयका ही वर्णन किया जाता है, प्ररूपण किया जाता है अथवा विशेषरूपसे ज्ञान कराया जाता है उसे स्वसमयवक्तव्य कहते हैं– और उसके भावको अर्थात् उसमें रहनेवाली विशेषताको स्वसमयवक्तव्यता कहते हैं। परसमय मिथ्यात्वको कहते हैं। उसका जिस प्राभृत या अनुयोगमें वर्णन किया जाता है, प्ररूपण किया जाता है या विशेष ज्ञान कराया जाता है उस प्राभृत या अनुयोगको परसमयवक्तव्य कहते हैं– और उसके भावको अर्थात् उसमें होनेवाली विशेषताको परसमयवक्तव्यता कहते हैं। जहांपर स्वसमय और पर-समय इन दोनोंका निरूपण करके परसमयको दोषयुक्त दिखलाया जाता है और स्वसमयकी स्थापना की जाती है उसे तदुभयवक्तव्य कहते हैं और उसके भावको अर्थात् उसमें रहनेवाली विशेषताको तदुभयवक्तव्यता कहते हैं। इनमेंसे इस जीवस्थान शास्त्रमें स्वसमयवक्तव्यता समझनी चाहिये, क्योंकि, इसमें स्वसमयका ही निरूपण किया गया है।

प्रमाण, प्रमेय और तदुभयके भेदसे अर्थाधिकारके तीन भेद हैं। उनमेंसे इस जीवस्थान शास्त्रमें एक प्रमेय-अर्थाधिकारका ही वर्णन है, क्योंकि, इसमें प्रमाणके विषयभूत प्रमेयका ही वर्णन किया गया है। इसतरह उपक्रमनामका प्रकारण समाप्त हुआ।

णिक्खेवो चउव्विहो णाम-ट्ठवणा-दव्व-भाव-जीवट्ठाण-भेएण। णाम-जीवट्ठाणं जीवट्ठाण-सद्दो। ट्ठवण-जीवट्ठाणं बुद्धीए समारोविय-जीवट्ठाण-दव्वं। दव्व-जीवट्ठाणं दुविहं आगम-णोआगम-भेएण। तत्थ जीवट्ठाण-जाणओ अणुवजुत्तो आगम-दव्व-जीवट्ठाणं। णोआगम-दव्व-जीवट्ठाणं तिविहं जाणगसरीर-भविय-तव्वदिरित्त-णोआगम-दव्व-जीवट्ठाण-भेएण। आदिल्ल-दुगं सुगमं। तव्वदिरित्तं जीवट्ठाणाहार-भूदागास-दव्वं। भाव-जीवट्ठाणं दुविहं आगम-णोआगम-भेएण। आगम-भाव-जीवट्ठाणं जीवट्ठाण-जाणओ उवजुत्तो। णोआगम-भाव-जीवट्ठाणं मिच्छाइट्ठियादि-चोद्दस-जीव-समासा। एत्थ णोआगम-भाव-जीवट्ठाणं पयदं। णिक्खेवो गदो।

नयैर्विना लोकव्यवहारानुपपत्तेर्नया उच्यन्ते। तद्यथा—प्रमाणपरिगृहीतार्थैक-देशे वस्त्वध्यवसायो[1] नयः। स द्विविधः, द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्चेति[2]। '[3]द्रवति द्रोष्यत्यदुद्रुवत्तांस्तान्पर्यायानिति द्रव्यम्[4], द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः।

नामजीवस्थान, स्थापनाजीवस्थान, द्रव्यजीवस्थान और भावजीवस्थानके भेदसे निक्षेप चार प्रकारका है। ' जीवस्थान ' इस प्रकारकी संज्ञाको नामजीवस्थान कहते हैं। जिस द्रव्यमें बुद्धिसे जीवस्थानकी आरोपणा की हो उसे स्थापनाजीवस्थान कहते हैं। आगम और नोआगमके भेदसे द्रव्यजीवस्थान दो प्रकारका है। उनमें, जीवस्थान शास्त्रके जाननेवाले किन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित जीवको आगमद्रव्यजीवस्थान कहते हैं। ज्ञायकशरीर, भावि और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे नोआगमद्रव्यजीवस्थान तीन प्रकारका है। इनमेंसे, आदिके दो अर्थात् ज्ञायकशरीर और भावि सुगम हैं। जीवस्थानोंके अथवा जीवस्थान शास्त्रके आधारभूत आकाश-द्रव्यको तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यजीवस्थान कहते हैं। आगम और नोआगमके भेदसे भाव-जीवस्थान दो प्रकारका है। जीवस्थान शास्त्रके जाननेवाले और वर्तमानमें उसके उपयोगसे युक्त जीवको आगमभावजीवस्थान कहते हैं। और मिथ्यादृष्टि आदि चौदह जीवसमासोंको नोआगमभावजीवस्थान कहते । इनमेंसे, इस जीवस्थान शास्त्रमें नोआगमभावजीवस्थान निक्षेप प्रकृत है। इस तरह निक्षेपका वर्णन हुआ।

नयोंके विना लोकव्यवहार नहीं चल सकता है, इसलिये यहां पर नयोंका वर्णन करते हैं। उन नयोंका खुलासा इस प्रकार है— प्रमाणके द्वारा ग्रहण की गई वस्तुके एक अंशमें वस्तुका निश्चय करनेवाले ज्ञानको नय कहते हैं। वह नय द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकके भेदसे दो

१. अनिराकृतप्रतिपक्षो वस्त्वंशग्राही ज्ञातुरभिप्रायो नयः। प्र. क. मा. पृ. २०५.

२. द्रव्यं सामान्यमभेदोऽन्वय उत्सर्गोऽर्थो विषयो येषां ते द्रव्यार्थिकाः। पर्यायो विशेषो भेदो व्यतिरेकोऽपवादोऽर्थो विषयो येषां ते पर्यायार्थिकाः। लघीय. पृ. ५१.

३. मु. श्चेति। द्रोष्यत्यदु।

४. द्रवति गच्छति तांस्तान् पर्यायान् द्रूयते गम्यते तैस्तैः पर्यायैरिति वा द्रव्यम्। जयध. अ. पृ. २६. निजनिजप्रदेशसमूहैरखण्डवृत्त्या स्वभावविभावपर्यायान् द्रवति द्रोष्यत्यदुद्रुवच्चेति द्रव्यम्। आ. प. ८७.

परि भेदमेति गच्छतीति पर्यायः, पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः। तत्र द्रव्यार्थिकस्त्रिविधः—नैगमः संग्रहो व्यवहारश्चेति। विधिव्यतिरिक्त-प्रतिषेधानुपलम्भाद्विधिमात्रमेव तत्त्वमित्यध्यवसायः समस्तस्य ग्रहणात्संग्रहः। द्रव्यव्यतिरिक्त-पर्यायानुपलम्भाद् द्रव्यमेव तत्त्वमित्यध्यवसायः वा संग्रह[1]:। संग्रहनयाक्षिप्तानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं भेदनं व्यवहारः[2], व्यवहारपरतन्त्रो व्यवहारनय इत्यर्थः। यदस्ति न तद् द्वयमतिलङ्घ्य वर्तत इति नैकगमो नैगमः, संग्रहासंग्रहस्वरूपद्रव्यार्थिको नैगम[3] इति यावत्। एते त्रयोऽपि नयाः नित्यवादिनः, स्वविषये पर्यायाभावतः सामान्यविशेषकालयोरभावात्।

....

प्रकारका है। जो उन उन पर्यायोंको प्राप्त होता है, प्राप्त होगा और प्राप्त हुआ था उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य ही जिसका अर्थ अर्थात् प्रयोजन हो उसे द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। 'परि' अर्थात् भेदको जो प्राप्त होता है उसे पर्याय कहते हैं। वह पर्याय ही जिस नयका प्रयोजन हो उसे पर्यायार्थिकनय कहते हैं।

द्रव्यार्थिक नयके तीन भेद हैं—नैगमनय, संग्रहनय और व्यवहारनय। विधि अर्थात् सत्ताको छोड़कर प्रतिषेध असत्ता भिन्न उपलब्ध नहीं होती है, इसलिये विधिमात्र ही तत्व है। इस प्रकारके निश्चय करनेवाले नयको समस्तका ग्रहण करनेवाला होनेसे संग्रहनय कहते हैं। अथवा, द्रव्यको छोड़कर पर्यायें नहीं पाई जाती हैं, इसलिये द्रव्य ही तत्त्व है। इसप्रकारके निश्चय करनेवाले नयको संग्रहनय कहते हैं। संग्रहनयसे ग्रहण किये गये पदार्थोंके विधिपूर्वक अवहरण करनेको अर्थात् भेद करनेको व्यवहार कहते हैं। उस व्यवहारके आधीन चलनेवाले नयको व्यवहारनय कहते हैं। जो है वह उक्त दोनों अर्थात् संग्रह और व्यवहारको छोड़कर नहीं रहता है। इसतरह जो केवल एकको ही प्राप्त नहीं है, अर्थात् अनेकको प्राप्त होता है उसे नैगमनय कहते हैं। अर्थात् संग्रह और असंग्रहरूप जो द्रव्यार्थिक नय है वह ही नैगमनय है। ये तीनों ही नय नित्यवादी हैं, क्योंकि, इन तीनों ही नयोंका विषय पर्याय न होनेके कारण इन

....

१. सद्रूपतानतिक्रान्तस्वस्वभावमिदं जगत्। सत्तारूपतया सर्वं संगृह्णन् संग्रहो मतः॥ स. त. टी. पृ. ३११. स्वजात्यविरोधेनैकत्वमुपनीय पर्यायानाक्रान्तभेदानविशेषेण समस्तग्रहणात्संग्रहः। स. सि. १,३३. स्वजात्यविरोधेनैकत्वोपनयात्समस्तग्रहणं संग्रहः। त. रा. वा. १, ३३. एकत्वेन विशेषाणां ग्रहणं संग्रहो मतः। सजातेरविरोधेन दृष्टेष्टाभ्यां कथंचन॥ त. श्लो. वा. १, ३३, ४९.

२. स. सि. १, ३३. त. रा. वा. १, ३३. प्र. क. मा. पृ. २०५. संग्रहेण गृहीतानामर्थानां विधिपूर्वकः। योऽवहारो विभागः स्याद्व्यवहारो नयः स्मृतः॥ त. श्लो. वा. १, ३३, ५८. व्यवहारस्तु तामेव प्रतिवस्तु व्यवस्थिताम्। तथैव दृश्यमानत्वाद व्यवहारयति देहिनः॥ स. त. टी. पृ. ३११

३. अनभिनिवृत्तार्थसङ्कल्पमात्रग्राही नैगमः। स. सि. १, ३३. अर्थसङ्कल्पमात्रग्राही नैगमः। त. रा. वा. १, ३३. तत्र सङ्कल्पमात्रस्य ग्राहको नैगमो नयः। त. श्लो. वा. १, ३३. अनिष्पन्नार्थसङ्कल्पमात्रग्राही नैगमः। प्र. क. मा. पृ. २०५. अन्यदेव हि सामान्यमभिन्नज्ञानकारणम्। विशेषोऽप्यन्य एवेति मन्यते निगमो नयः॥ स. त. टी. पृ. ३११. नैकैर्मानैर्महासत्तासामान्यविशेषविशेषज्ञानैर्मिमीते मिनोति वा नैकमः। निगमेषु

पर्यायार्थिको द्विविधः– अर्थनयो व्यञ्जननयश्चेति । द्रव्यपर्यायार्थिकनययोः[1] किंकृतो भेदश्चेदुच्यते ऋजुसूत्रवचनविच्छेदो मूलाधारो येषां नयानां ते पर्यायार्थिकाः । विच्छिद्यतेऽस्मिन् काल इति विच्छेदः । ऋजुसूत्रवचनं नाम वर्तमानवचनम्, तस्य विच्छेदः ऋजुसूत्रवचनविच्छेदः । स कालो मूल आधारो येषां नयानां ते पर्यायार्थिकाः। ऋजुसूत्रवचनविच्छेदादारभ्य आ एकसमयाद्वस्तुस्थित्यध्यवसायिनः पर्यायार्थिका इति

तीनों नयके विषयमें सामान्य और विशेषकालका अभाव है ।

विशेषार्थ–– एवंभूतनयसे लेकर विलोमक्रमसे ऋजुसूत्र नय तक पूर्व पूर्व नय सामान्य रूपसे और उत्तरोत्तर नय विशेषरूपसे वर्तमान कालवर्ती पर्यायको विषय करते हैं । इस प्रकार सामान्य और विशेष दोनों ही काल द्रव्यार्थिक नयके विषय नहीं होते हैं । इस विवक्षासे द्रव्यार्थिक नयके तीनों भेदोंको नित्यवादी कहा है । अथवा, द्रव्यार्थिक नयमें कालभेदकी विवक्षा ही नहीं है, इसलिये उसमें सामान्य और विशेषकालका अभाव कहा है ।

अर्थनय और व्यंजन (शब्द) नयके भेदसे पर्यायार्थिक नय दो प्रकारका है ।

शंका––- द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयमें भेद किस कारणसे है ?

समाधान––- ऋजुसूत्र वचनोंका विच्छेद जिस कालमें होता है, वह (काल) जिन नयोंका मूल आधार है वे पर्यायार्थिकनय हैं । विच्छेद अथवा अन्त जिस कालमें होता है उस कालको विच्छेद कहते हैं । वर्तमानवचनको ऋजुसूत्रवचन कहते हैं और उसके विच्छेदको ऋजुसूत्रवचनविच्छेद कहते हैं । वह ऋजुसूत्रके प्रतिपादक वचनोंका विच्छेदरूप काल जिन नयोंका मूल आधार है उन्हें पर्यायार्थिकनय कहते हैं । अर्थात् ऋजुसूत्रके प्रतिपादक वचनोंके विच्छेदरूप कालसे लेकर एक समय पर्यन्त वस्तुकी स्थितिका निश्चय करनेवाले पर्यायार्थिकनय हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इन पर्यायार्थिक नयोंके अतिरिक्त शेष शुद्धाशुद्धरूप द्रव्यार्थिक नय हैं ।

वा अर्थबोधेषु कुशलो भवो वा नैगमः । अथवा नैके गमाः पन्थानो यस्य स नैकगमः । तत्रायं सर्वत्र सदित्येवमनुगताकारावबोधहेतुभूतां महासत्तामिच्छति अनुवृत्तव्यावृत्तावबोधहेतुभूतं च सामान्यविशेषं द्रव्यत्वादि व्यावृत्तावबोधहेतुभूतं च नित्यद्रव्यवृत्तिमन्त्यं विशेषमिति । स्था. सू. पृ. ३७१. सिद्धसेनीयाः पुनः षडेव नयानभ्युपगतवन्तः, नैगमस्य संग्रहव्यवहारयोरन्तर्भावविवक्षणात् । तथाहि यदा, नैगमः सामान्यप्रतिपत्तिपरस्तदा स संग्रहेऽन्तर्भवति सामान्याभ्युपगमपरत्वात् विशेषाभ्युपगमनिष्ठस्तु व्यवहारे । आ. सू. पृ. ७.

१. मु. द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकयोः ।

२. द्रव्यमर्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः तद्भवलक्षणसामान्येनाभिन्नसादृश्यलक्षणसामान्येन भिन्नमभिन्नं च वस्त्वभ्युपगच्छन् द्रव्यार्थिक इति यावत् । परि भेदं ऋजुसूत्रवचनविच्छेदं एति गच्छतीति पर्यायः । स पर्यायः अर्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः सादृश्यलक्षणसामान्येन भिन्नमभिन्नं च द्रव्यार्थिकाशेषविषयं ऋजुसूत्रवचनविच्छेदेन पाठयन् पर्यायार्थिक इत्यवगन्तव्यः । जयध. अ. पृ. २७.

यावत् । अपरे शुद्धाशुद्धद्रव्यार्थिकाः[1] । तत्रार्थव्यञ्जनपर्यायैर्विभिन्नलिङ्गसंख्याकालकारकपुरुषोपग्रहभेदैरभिन्नं वर्तमानमात्रं वस्त्वध्यवस्यन्तोऽर्थनयाः[2], न शब्दभेदेनार्थभेद इत्यर्थः । व्यञ्जनभेदेन वस्तुभेदाध्यवसायिनो व्यञ्जननयाः[3] । तत्रार्थनयः ऋजुसूत्रः[4] । कुतः ? ऋजु प्रगुणं सूत्रयति सूचयतीति तत्सिद्धेः । नैगमसंग्रहव्यवहाराश्चार्थनया इति चेत्, सन्त्वेतेऽर्थनयाः अर्थव्यापृतत्वात्, किंतु न ते पर्यायार्थिकाः, द्रव्यार्थिकत्वात् ।

व्यञ्जननयस्त्रिविधः– शब्दः समभिरूढ एवंभूत इति । शब्दपृष्ठतोऽर्थग्रहण-

यही उनमें भेद है ।

उनमेंसे, अर्थपर्याय और व्यंजनपर्यायसे भेदरूप और लिंग, संख्या, काल, कारक, पुरुष और उपग्रहके भेदसे अभेदरूप केवल वर्तमान-समयवर्ती वस्तुके निश्चय करनेवाले नयोंको अर्थनय कहते है । यहां पर शब्दोंके भेदसे अर्थमें भेदकी विवक्षा नहीं है । व्यंजन (शब्द) के भेदसे वस्तुमें भेदका निश्चय करनेवाले नय व्यंजननय कहलाते हैं । इनमें, ऋजुसूत्र नयको अर्थनय समझना चाहिये । क्योंकि, ऋजु-सरल अर्थात् वर्तमान-समयवर्ती पर्यायमात्रको जो सूत्रयति अर्थात् सूचित करे उसे ऋजुसूत्र नय कहते हैं । इसतरह वर्तमान पर्यायरूपसे अर्थको ग्रहण करनेवाला होनेके कारण यह नय अर्थनय है, यह बात सिद्ध हो जाती है ।

शंका–– नैगम, संग्रह और व्यवहारनय भी तो अर्थनय हैं, फिर यहां पर अर्थनयोंमें केवल ऋजुसूत्रनयका ही ग्रहण क्यों किया ?

समाधान–– अर्थको विषय करनेवाले होनेके कारण वे भी अर्थनय हैं, इसमें कोई बाधा नहीं है । किंतु वे तीनों नय द्रव्यार्थिकरूप होनेके कारण पर्यायार्थिक नहीं है ।

व्यंजननय तीन प्रकारका है–शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत । शब्दके आधारसे

---

१. तत्र शुद्धद्रव्यार्थिकः पर्यायकलङ्करहितः बहुभेदः संग्रहः । (अशुद्ध) द्रव्यार्थिकः पर्यायकलङ्काङ्कितद्रव्यविषयः व्यवहारः । यदस्ति न तद्द्वयमतिलंघ्य वर्तत इति नैकगमो नैगमः शब्दशीलकर्मकार्यकारणाधाराधेयसहचारमानमेयोन्मेयभूतभविष्यद्वर्तमानादिकमाश्रित्य स्थितोपचारविषयः । जयध. अ. पृ. २७.

२. वस्तुनः स्वरूपं स्वधर्मभेदेन भिदानोऽर्थनयः । अभेदको वा, अभेदरूपेण सर्वं वस्तु इयर्ति एति गच्छति इत्यर्थनयः । जयध. अ. पृ. २७.

३. ऋजुसूत्रवचनविच्छेदोपलक्षितस्य वस्तुनः वाचकभेदेन भेदको व्यञ्जननयः । जयध. अ. पृ. २७.

४. ऋजु प्रगुणं सूत्रयति तन्त्रयत इति ऋजुसूत्रः । स. सि. १, ३३. सूत्रपातवद्दजुसूत्रः । यथा ऋजुः सूत्रपातस्थता ऋजु प्रगुणं सूत्रयति तन्त्रयति ऋजुसूत्रः । त. रा. वा. १, ३३. ऋजुसूत्रं क्षणध्वंसि वस्तु सत्सूत्रयेदृजु । प्राधान्येन गुणीभावाद् द्रव्यस्यानर्पणात्सतः ।। त. श्लो. वा. १, ३३, ६१. ऋजु प्राञ्जलं (व्यक्तं) वर्तमानक्षणमात्रं सूत्रयतीत्यृजुसूत्रः । प्र. क. मा. पृ. २०५. तत्रर्जुसूत्रनीतिः स्याच्छुद्धपर्यायसंश्रिता । नश्वरस्यैव भावस्य भावा स्थितिवियोगतः ।। अतीतानागताकारकालसंस्पर्शवर्जितम् । वर्तमानतया सर्वमृजुसूत्रेण सूत्र्यते ।। स. त. टी. पृ. ३११-३१२.

प्रवणः शब्दनयः[1], लिङ्गसंख्याकालकारकपुरुषोपग्रहव्यभिचारनिवृत्तिपरत्वात् । लिङ्ग-व्यभिचारस्तावदुच्यते– स्त्रीलिङ्गे पुल्लिङ्गाभिधानं तारका स्वातिरिति । पुल्लिङ्गे स्त्र्यभिधानं अवगमो विद्येति । स्त्रीत्वे नपुंसकाभिधानं वीणा आतोद्यमिति । नपुंसके स्त्र्यभिधानं आयुधं शक्तिरिति । पुल्लिङ्गे नपुंसकाभिधानं पटो वस्त्रमिति । नपुंसके पुल्लिङ्गाभिधानं आयुधं परशुरिति । संख्याव्यभिचारः– एकत्वे द्वित्वं नक्षत्रं पुनर्वसू इति । एकत्वे बहुत्वं नक्षत्रं शतभिषज इति । द्वित्वे एकत्वं गोदौ ग्राम इति ।

अर्थके ग्रहण करनेमें समर्थ शब्दनय है, क्योंकि, यह नय लिंग, संख्या, काल, कारक, पुरुष और उपग्रहके व्यभिचारकी निवृत्ति करनेवाला है ।

स्त्रीलिंगके स्थान पर पुल्लिंगका कथन करना और पुल्लिंगके स्थानपर स्त्रीलिंगका कथन करना आदि लिंगव्यभिचार है । जैसे ' तारका स्वातिः ' तारका स्वाति हैं । इस प्रयोगमें तारका शब्द स्त्रीलिंग है और स्वाति शब्द पुल्लिंग है, इसलिए स्त्रीलिंगके स्थानपर पुल्लिंग शब्दका प्रयोग करना लिंगव्यभिचार है । ' अवगमो विद्या ' अवगम विद्या है । इस प्रयोगमें अवगम शब्द पुल्लिंग है और विद्या शब्द स्त्रीलिंग है, इस लिए पुल्लिंगके स्थानपर स्त्रीलिंग शब्द कहनेसे लिंगव्यभिचार है । ' वीणा आतोद्यम् ' वीणा आतोद्य है । यहांपर वीणा शब्द स्त्रीलिंग है और आतोद्य शब्द नपुंसकलिंग है । इसलिए स्त्रीलिंगके स्थानपर नपुंसकलिंग शब्द कहनेसे लिंगव्यभिचार है । ' आयुधं शक्तिः ' आयुध शक्ति है । यहांपर आयुध शब्द नपुंसकलिंग है । और शक्ति शब्द स्त्रीलिंग है । इसलिए नपुंसकलिंगके स्थानपर स्त्रीलिंग शब्द कहनेसे लिंगव्यभिचार है । ' पटो वस्त्रम् ' पट वस्त्र है । यहांपर पट शब्द पुल्लिंग है और वस्त्र शब्द नपुंसकलिंग है । इसलिए पुल्लिंगके स्थानपर नपुंसकलिंग शब्द कहनेसे लिंगव्यभिचार है । ' आयुधं परशुः ' आयुध फरसा है । यहां पर आयुध शब्द नपुंसकलिंग है और परशु शब्द पुल्लिंग है, इसलिए नपुंसकलिंगके स्थानपर पुल्लिंग शब्द कहनेसे लिंगव्यभिचार है ।

एक वचन आदि की जगह द्विवचन आदिका कथन करना संख्याव्यभिचार है । जैसे, नक्षत्र पुनर्वसू हैं । यहांपर नक्षत्र शब्द एक वचनान्त है और पुनर्वसू शब्द द्विवचनान्त है । इसलिए एक वचनके स्थानमें द्विवचनका कथन करनेसे संख्याव्यभिचार है । ' नक्षत्रं शतभिषजः ' नक्षत्र शतभिषज हैं । यहांपर नक्षत्र शब्द एकवचनान्त है और शतभिषज शब्द बहुवचनान्त है । इसलिए एक वचनके स्थानमें बहुवचनका कथन करनेसे संख्याव्यभिचार है । ' गोदौ ग्रामः ' गोदौ ग्राम है । यहांपर गोदौ शब्द द्विवचनान्त है और ग्राम शब्द एकवचनान्त है । इसलिए

---

१. लिङ्गसंख्यासाधनादिव्यभिचारनिवृत्तिपरः शब्दनयः । स. सि. १, ३३. शपत्यर्थमाह्वयति प्रत्याययतीति शब्दः । त. रा. वा. १, ३३. कालादिभेदतोऽर्थस्य भेदं यः प्रतिपादयेत् । सोऽत्र शब्दनयः शब्द-प्रधानत्वादुदाहृतः ॥ त. श्लो. वा. १, ३३, ६८. कालकारकलिङ्गसंख्यासाधनोपग्रहभेदाद्भिन्नमर्थं शपतीति शब्दो नयः । प्र. क. मा. पृ. २०६. विरोधिलिङ्गसंख्यादिभेदाद्भिन्नस्वभावताम् । तस्यैव मन्यमानोऽयं शब्दः प्रत्यवतिष्ठते ॥ स. त. टी. पृ. ३१३.

द्वित्वे बहुत्वं पुनर्वसू पञ्चतारका इति । बहुत्वे एकत्वं आम्राः वनमिति । बहुत्वे द्वित्वं देवमनुष्या उभौ राशी इति । कालव्यभिचारः– विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता', भविष्यदर्थे भूतप्रयोगः । भावि कृत्यमासीदिति भूते भविष्यत्प्रयोग इत्यर्थः । साधन-व्यभिचारः, ग्राममधिशेते इति । पुरुषव्यभिचारः[2], एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितेति । उपग्रहव्यभिचारः, रमते विरमति, तिष्ठति संतिष्ठते,

---

द्विवचनके स्थानमें एक वचनका कथन करनेसे संख्याव्यभिचार है, 'पुनर्वसू पंचतारकाः' पुनर्वसू पांच तारका हैं । यहांपर पुनर्वसू द्विवचनान्त है और पंचतारका शब्द बहुवचनान्त है । इसलिए द्विवचनके स्थानपर बहुवचनका कथन करनेसे संख्याव्यभिचार है । 'आम्राः वनम्' आमोंके वृक्ष वन है । यहांपर आम्र शब्द बहुवचनान्त है और वन शब्द एकवचनान्त है । इसलिए बहुवचनके स्थानपर एकवचनका कथन करनेसे संख्याव्यभिचार है । 'देवमनुष्या उभौ राशी ।' देव और मनुष्य ये दो राशि हैं । यहांपर देव-मनुष्य शब्द बहुवचनान्त है और राशी शब्द द्विवचनान्त है । इसलिए बहुवचनके स्थानपर द्विवचन शब्दका कथन करना संख्याव्यभिचार है ।

भविष्यत् आदि कालके स्थानपर भूत आदि कालका प्रयोग करना कालव्यभिचार है । जैसे, 'विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता' जिसने समस्त विश्वको देख लिया है ऐसा इसके पुत्र होगा । यहांपर विश्वका देखना भविष्यत् कालका कार्य है । परंतु उसका भूतकालके प्रयोगद्वारा कथन किया गया है । इसलिऐ यहां पर भविष्यत् कालका कार्य भूतकालमें कहनेसे कालव्यभिचार है । इसीतरह 'भाविकृत्यमासीत्' आगे होनेवाला कार्य हो चुका । यहां पर भी भूतकालके स्थानपर भविष्यत् कालका कथन करनेसे कालव्यभिचार है ।

एक साधन अर्थात् एक कारकके स्थानपर दूसरे कारकके प्रयोग करनेको साधन-व्यभिचार कहते हैं । जैसे, 'ग्राममधिशेते' वह ग्राममें शयन करता है । यहांपर सप्तमी कारकके स्थानपर द्वितीया कारकका प्रयोग किया गया है, इसलिए यह साधनव्यभिचार है ।

उत्तम पुरुषके स्थानपर मध्यम पुरुष और मध्यम पुरुषके स्थानपर उत्तम पुरुष आदिके

---

१. ये हि वैयाकरणव्यवहारनयानुरोधेन 'धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः' इति सूत्रमारम्य विश्वदृश्वाऽस्य पुत्रो जनिता, भाविकृत्यमासीदित्यत्र कालभेदेऽप्येकपदार्थमादृता यो विश्वं द्रक्ष्यति सोऽपि पुत्रो जनितेति भविष्यत्कालेनातीतकालस्याभेदोऽभिमतः, तथा व्यवहारदर्शनादिति । तत्र यः परीक्षायाः मूलक्षतेः काल-भेदेऽप्यर्थस्याभेदेऽतिप्रसंगात् रावणशंखचक्रवर्तिनोरप्यतीतानागतकालयोरेकत्वापत्तेः । आसीद्रावणो राजा, शंखचक्रवर्ती भविष्यतीति शब्दयोर्भिन्नविषयत्वात् नैकार्थतेति चेत्, विश्वदृश्वा जनितेत्यनयोरपि माभूत् तत एव । न हि विश्वं दृष्टवान् इति विश्वदृशि त्वेतिशब्दस्य योऽर्थोऽतीतकालस्य जनितेति शब्दस्यानागतकालः पुत्रस्य भाविनोऽतीतत्वविरोधात् । अतीतकालस्याप्यनागतत्वाध्यपरोपादेकार्थताभिप्रेतेति चेत् तर्हि न परमार्थतः-कालभेदेऽप्यभिन्नार्थव्यवस्था । त. श्लो. वा. पृ. २७२–२७३.

२. 'एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, स यातस्तेपिता' इति साधनभेदेपि पदार्थमभिन्नमादृताः "प्रहासे मन्य वाचि युष्मन्मन्यतेरस्मदेकवच्च" इति वचनात् । तदपि न श्रेयः परीक्षायां, अहं पचामि, त्वं

विशति निविशते इति । एवमादयो व्यभिचारा न युक्ताः, अन्यार्थस्यान्यार्थेन सम्बन्धाभावात् । ततो यथालिङ्गं यथासंख्यं यथासाधनादि च न्याय्यमभिधानमिति ।

नानार्थसमभिरोहणात्समभिरूढः[1] । इन्दनादिन्द्रः पूर्दारणात्पुरन्दरः शकनाच्छक्र इति भिन्नार्थवाचकत्वान्नैते एकार्थवर्तिनः । न पर्यायशब्दाः सन्ति, भिन्नपदानामे-

---

कथन करनेको पुरुषव्यभिचार कहते हैं । जैसे, 'एहि मन्ये रथेन यास्यसि नहि यास्यसि यातस्ते पिता' आओ, तुम समझते हो कि मैं रथसे जाऊंगा परंतु अब न जाओगे, तुम्हारा पिता चला गया । यहांपर 'मन्यसे' के स्थानपर 'मन्ये' यह उत्तमपुरुषका और 'यास्यामि' के स्थानपर 'यास्यसि' यह मध्यमपुरुषका प्रयोग हुआ है, इसलिये पुरुषव्यभिचार है ।

उपसर्गके निमित्तसे परस्मैपदके स्थानपर आत्मनेपद और आत्मनेपदके स्थानपर परस्मैपदके कथन कर देनेको उपग्रहव्यभिचार कहते हैं । जैसे, 'रमते' के स्थानपर 'विरमति', 'तिष्ठति' के स्थानपर 'संतिष्ठते' और विशति के स्थानपर 'निविशते' का प्रयोग किया जाता है ।

इसतरह जितने भी लिंग आदि व्यभिचार पूर्वमें कहे गये हैं वे सभी अयुक्त हैं, क्योंकि, अन्य अर्थका अन्य अर्थके साथ संबन्ध नहीं हो सकता है । इसलिये समान लिंग, समान संख्या और समान साधन आदिका कथन करना ही उचित है ।

शब्दभेदसे जो नाना अर्थोंमें अभिरूढ़ होता है उसे समभिरूढ़ नय कहते हैं । जैसे, 'इन्दनात्' अर्थात् परम ऐश्वर्यशाली होनेके कारण इन्द्र 'पूर्दारणात्' अर्थात् नगरोंका विभाग करनेवाला होनेके कारण पुरन्दर और 'शकनात्' अर्थात् सामर्थ्यवाला होनेके कारण शक्र । ये तीनों शब्द भिन्नार्थवाचक होनेसे इन्हें एकार्थवर्ती नहीं समझना चाहिये । इस नयकी दृष्टिमें पर्यायवाची शब्द नहीं होते हैं, क्योंकि, भिन्न पदोंका एक पदार्थमें रहना स्वीकार कर लेनेमें

पचसीत्यत्रापि अस्मद्युष्मत्साधनाभेदेऽप्येकार्थत्वप्रसंगात् । त. श्लो. वा. पृ. २७३. तथा पुरुषभेदेऽपि नैकान्तिकं तद् वस्तु इति, 'एहि मन्ये' इत्यादि । इति च प्रयोगो न युक्तः, अपि तु 'एहि मन्यसे यथाहं रथेन यास्यामि' इत्यनेनैवं परभावेनैतन्निर्देष्टव्यम् । स. त. पृ. ३१३. 'प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तम एकवच्च' पा. १, ४, १०६. 'एहि मन्ये रथेन यास्यसि, नहि यास्यसि यातस्ते पिता' इति प्रहासे यथाप्राप्तमेव प्रतिपत्तिः नात्र प्रसिद्धार्थविपर्यासे किञ्चिन्निबन्धनमस्ति, 'रथेन यास्यसि, इति भावगमनाभिधानात् प्रहासो गम्यते'। 'नहि यास्यसि' इति बहिर्गमनं प्रतिषिध्यते । अनेकस्मिन्नपि प्रहसितरि च प्रत्येकमेव परिहास इति अभिधानवशाद् 'मन्ये' इति एकवचनमेव । लौकिकश्च प्रयोगोऽनुसर्तव्य इति न प्रकारान्तरकल्पना न्याय्या । 'त्रीणि त्रीणि अन्य-युष्मदस्मदि' हैम. ३, ३, १७.

१. स. सि. १, ३३. त. रा. वा. १, ३३. पर्यायशब्दभेदेन भिन्नार्थस्याधिरोहणात् । नयः समभिरूढः स्यात्पूर्ववच्चास्य निश्चयः ॥ त. श्लो. वा. १, ३३, ७६. नानार्थान् समेत्याभिमुख्येन रूढः समभिरूढः । प्र. क. मा. पृ. २०६. तथाविधस्य तस्यापि वस्तुनः क्षणवृत्तिनः । ब्रूते समभिरूढस्तु संज्ञाभेदेन भिन्नताम् ॥ स. त. टी. पृ. ३१३